श्री चक्रेश्वर निरूपणम्

(श्री वर्णात्मिकाये सप्ताक्षर-मातृकाये नमः)

लेखक

डॉ. चमनलाल रैना

प्रकाशक

शारदा साधना केन्द्र

32- G/1, ब्लॉक-बी, दिलशाद गार्डन, दिल्ली - 110 095

फोन : 011-22136144

श्रीचक्र प्रियबिन्दु तर्पणपरा श्रीराज-राजेश्वरी
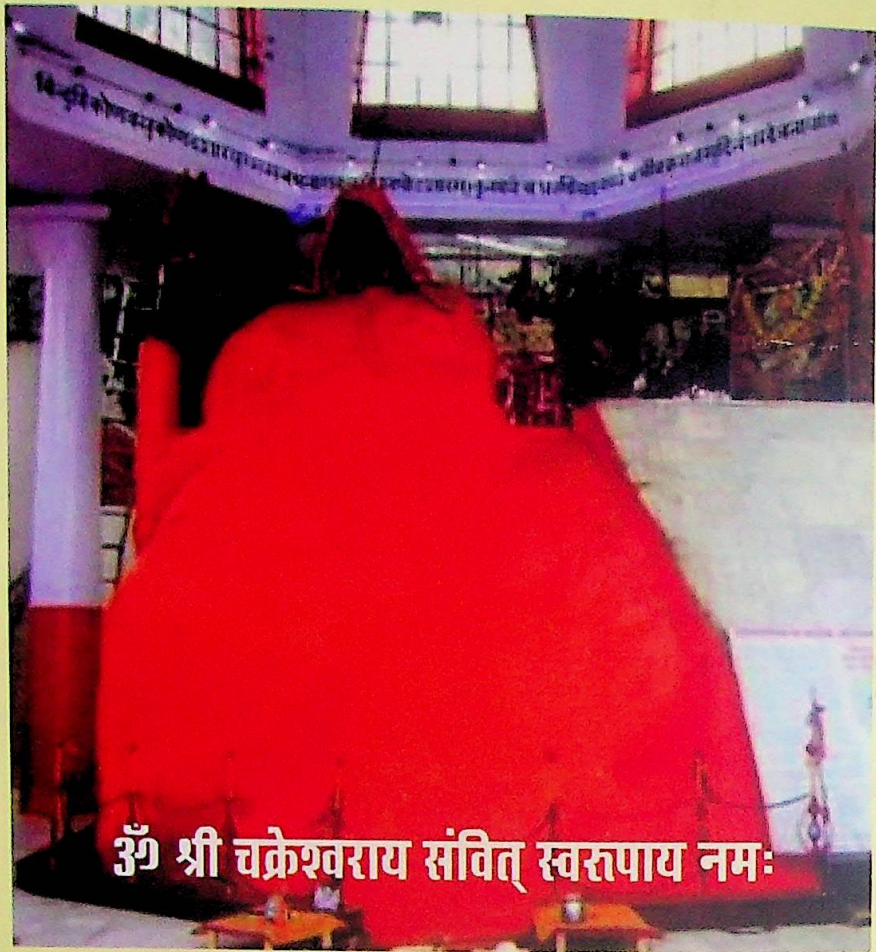
जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते।।

श्री चक्रेश्वर निरूपणम्

(श्री वर्णात्मिकायै सप्ताक्षर मातृकायै नमः)

लेखक
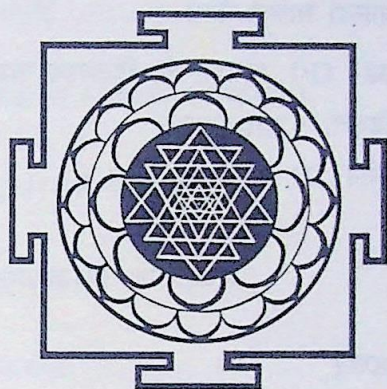
डॉ. चमन लाल रैना

प्रकाशक

शारदा साधना केन्द्र

32- G/I, ब्लॉक-बी, दिलशाद गार्डन

दिल्ली - 110 095

फोन : 011-22136144

मूल्य 100/- रु.

प्रकाशन वर्ष : 2016

प्रकाशक : शारदा साधना केन्द्र

32- G/1, ब्लॉक-बी, दिलशाद गार्डन,

दिल्ली - 110 095

फोन : 011-22136144

प्रतियाँ : 300

मूल्य : 100 ₹

मुद्रक : जॉब ऑफसेट प्रिन्टर्स, ब्रह्मपुरी, अजमेर

लेखक : डॉ. चमन लाल रैना

अनुक्रमणिका

प्रकाशकीय वक्तव्य

काश्मीर के भूभाग में देवी पराशक्ति का प्रादुर्भाव सतीसर के रूप में हुआ है। अतः सतीसर कश्मीर भूभाग का गर्भगृह है। जहाँ एक ओर महादेव पर्वत की शृंखला है, वहीं सुरम्य सिंधु नदी एवं पञ्चतरणी का प्रवाह वितस्ता नदी से मिलकर प्रयागराज शादीपुर (शारदापुर) हमारी सांस्कृतिक धरोहर को प्रतिबिम्बित करता है। हमारे लिए आध्यात्मिक क्षेत्र में शारिका पर्वत का महत्व परात्पर शक्ति पीठ के रूप में विद्यमान है, जहाँ पर शिलारूपिणी चक्रेश्वरी 'चक्रेश्वर' का अभिन्न रूप है। यह वह स्वयंभू शिला है, जिसमें बिन्दु, त्रिकोण, अष्टकोण, चतुर्दशकोण, वृत्तत्रय एवं भूपुर, श्री शारिका की स्वनिर्मित्त वर्णमाला के स्थायी कोष्ठ हैं। सप्तमातृकाओं का उदगम् एवं प्रार्दुभाव हमारी सांस्कृतिक चेतना का अभिन्न भाग बन गया है। यूँ तो सप्तमातृका पूजन 'काहनेथर' (जातकर्म संस्कार) एवं देवगुण (दिवगोण) के समय तथा कन्या संस्कार के समय वांछनीय है। इसका दार्शनिक महत्व तो अध्यात्म से भरपूर है।

विस्थापन के कारण इस सप्तमातृका पूजन का ज्ञान आहिस्ता-आहिस्ता लोप होता जा रहा है। मूलतः सत्थू, श्रीनगर निवासी सोमनाथ कौल (घासी), एवं प्रो. वी.एन. द्राबू जी भी सप्तमातृकादि विद्या जानने के लिए बहुत ही उत्सुक रहे हैं। अतः मैंने अपने मित्र डा. चमन लाल रैना जी को सप्तमातृका पर वृहत लेख लिखने के लिए आग्रह किया। उनके पास जो सामग्री पं. जगन्नाथ जी सिबू से प्राप्त हो गई थी, उसी को आधार बनाकर इस चक्रेश्वर निरूपण में सप्तमातृका को पुस्तिका का आकार देकर मैंने इस को प्रकाशित करने का निश्चय बना दिया, ताकि भावी पीढ़ी के लिए यह सांस्कृतिक एवं धार्मिक धरोहर सुरक्षित रहे।

जहाँ तक मैंने इस हस्त लिखित पाण्डुलिपि का अध्ययन किया तो मुझे लगा कि सप्तमातृकाएं वास्तव में भाषा विज्ञान पर ही आधारित है जिसमें संधि का प्रयोग कश्मीर के शिव-अद्वैत दर्शन को प्रदर्शित करता है, जो कश्मीर का मौलिक चिंतन रहा है। बीजाक्षरों में चन्द्र बिन्दु का प्रयोग ऐं, ह्रीं, क्लीं, इत्यादि शैवयोग की एक प्रक्रिया है। जिसका तात्पर्य वैदिक ऋतम् और सत्यम् है। संस्कार जातकर्म से हो, अथवा यज्ञोपवीत एवं कन्या संस्कार हो; उसी से आजीवन शुद्धिकरण बना रहता है। मुझे आशा है कि हमारा समाज इस लाभदायी पुस्तिका को पढ़कर प्रयोग में लायें।

-चमनलाल राज़दान

डॉ. रामकुमार दाधीच
संयुक्त निदेशक
संस्कृत शिक्षा राजस्थान
डॉ. राधाकृष्णन् शिक्षा संकुल, जयपुर

श्रीविद्या सनातन धर्म की सर्वाधिक गूढ विद्या है। इसमें भगवती त्रिपुरसुन्दरी की महिमा के गुह्य रहस्य भरे हैं। ज्ञान, कर्म और भक्ति की त्रिवेणी से युक्त श्रीविद्या भक्तों के लिए कल्पद्रुम ही है। विधि पूर्वक इसका अनुष्ठान करने से भगवती त्रिपुरसुन्दरी प्रसन्न होकर अभीष्ट फल प्रदान करती है। श्रीराजराजेश्वरी स्तुति में श्रीचक्र की महिमा का सारपूर्ण वर्णन है। 'श्रीचक्र प्रिय बिन्दु तर्पण परा श्रीराजराजेश्वरी' इस आप्त वाक्य का भाष्य सम्पूर्ण स्तुति में है। श्लोकवाक्य बीजमन्त्रों पर आधारित है। इस प्रौढ स्तुतिरचना का अनुवाद, व्याख्या और सम्पादन गहन पाण्डित्य से ही सम्भव है। इस मातृशक्ति तत्व के रत्नाकर में गहरी डुबकी लगाकर साधकों के उपयोगार्थ रत्न प्रस्तुत करने का साहस बिरले विद्वान ही कर सकते हैं। शिक्षाविद् अध्यात्म-चिन्तक प्रो. चमनलाल रैना ऐसे ही विरल प्रबुद्ध विद्वान् हैं। प्रो. रैना इसका विवेचनात्मक सम्पादन कर अभाव की पूर्ति की है। श्रीराजराजेश्वरी स्तुति केवल दार्शनिक रचना नहीं है। इसके भावार्थ की अवगति और प्रस्तुति में प्रो. रैना आध्यात्मिक संस्कृति के पुरोधा हैं। इनका व्यक्तित्व, धर्म, दर्शनशास्त्र, साहित्य और संस्कृति से जुड़े जीवन मूल्यों के योगक्षेम में समर्पित है।

श्रीचक्र की अवधारणा, नवचक्रों की देवता संख्या, समयाचार की विधि का निरूपण, चक्रभेदनिरूपण, पुस्तक पूजन विधान आदि के साथ श्रीराजराजेश्वरी भगवती शारिका के स्वरूप और महिमा का इस कृति में सरल भाषा में सारगर्भित विवेचन किया गया है जिसे जिज्ञासु साधक सुगमता से हृदयगम कर सकता है।

प्रो. रैना की भाषा-शैली सरल प्रांजल और प्रवाहमयी है। अध्यात्म के गूढ़ तत्त्वों को सहज व्यावहारिक भाषा में व्यक्त करने में आप निपुण हैं। इस कृति के द्वारा संस्कृत से अनभिज्ञ श्रद्धालु भी श्रीराजराजेश्वरी स्तुति का अर्थज्ञान कर सकते हैं। मुझे विश्वास है कि यह कृति भगवती अष्टादशभुजा शारिका के उपासकों तथा शक्तितत्व के जिज्ञासुओं का मार्गदर्शन करेगी। इस उत्कृष्ट कृति के लिए साधुवाद!

शुभेच्छु

27 अगस्त, 2016 डॉ. रामकुमार दाधीच

प्राक्कथन (श्रीचक्र की महिमा)

यानि तीर्थानि भारतवर्षे, तानि तीर्थानि कश्मीरमण्डले।
यानि तीर्थानि कश्मीरमण्डले, तानि तीर्थानि वितस्तायाम्।

कश्मीर की पुण्य भूमि में जगन्माता श्री शारिका भगवती की विमर्श स्वरूप चक्रेश्वर शिलाविग्रह देवी देवताओं से स्तुत्य स्थली रही है। इस पुण्य भूमि में तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं का वास रहा है। शिव के प्रादुभार्व स्वरूप में श्री अमरनाथ स्वामी (अमरेश्वर), हरेश्वर, ध्यानेश्वर, सुरेश्वर, नन्दीश्वर, एवं अष्टभैरव हैं। श्री ज्वाला, श्री महाकाली, श्री त्रिपुरसुन्दरी, श्री बाला, श्री ज्येष्ठा देवी, श्री राज्ञी देवी, जगदम्बा के ही विभिन्न रूपों में विराजमान हैं। एक ओर भगवान शिव का प्राकृतिक स्वरूप, तो दूसरी ओर भगवती जगदम्बा का सौम्य स्वरूप कितना अद्भुत दिव्य दर्शन है। श्रीनगर के क्षेत्र में अष्टादशभुजा शारिका कश्मीरी पण्डितों के आध्यात्मिक चिन्तन में श्रेयस्करी, नित्य विलासिनी, चेतनास्वरूपा परमेश्वरी है। इस प्रकार शारिका भगवती सृष्टिकर्त्री है तथा दुःख विनाशिनी स्र्वस्वरूपा राजराजेश्वरी भी हैं।

श्रद्धा, भक्ति, परिक्रमा, पूजा, अर्चना एवं मंत्र साधना से देवी की आराधना की जाती है, क्योंकि शारिका श्रेयस्करी पूर्णा-प्रकृति है।

वैसे तो भक्तों की मान्यता है—कि तेंतीस (३३) कोटि देवी देवताओं का वास श्री शारिका पर्वत (हारी पर्वत) के कण-कण में है। जो भी भक्त श्री शिला रूपिणी शारिका की परिक्रमा आस्था से, श्रद्धा एवं अनुष्ठान से, होम-यज्ञ, बिन्दुतर्पण से करते हैं, उनकी अटल भक्ति से उनके मनोवांच्छित फल प्राप्त होते हैं। इसमें संदेह नहीं है।

अष्टादश-भुजा शारिका श्रीयुक्त श्यामसुन्दरी है। वही महालक्ष्मी है। ध्यान श्लोक इस प्रकार है :

अक्षस्रक् परशुं गदेषु कुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां,
दण्डं शक्तिमसिञ्च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाश सुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रवाल प्रभां
सौरिभर्मदिनीमिह महालक्ष्मी सुरौजद्भवाम्॥

(पाठान्तर में प्रसन्नानां तथा सरोजस्थिताम्)

मैं (साधक) कमल के आसन पर स्थित, प्रसन्न वदना-सौम्य स्वरूपा, महिषासुर / राक्षसों का दमन करने वाली भगवती अष्टादशभुजा महालक्ष्मी की अर्चना तथा भजन करता हूँ।

जिनके हाथों में अक्षमाला, फरसा, गदा, बाण, वज्र, पद्म, धनुष, कुण्डिका, दण्ड, शक्ति, खड्ग, ढाल, शङ्ख, घण्टा, मधुपान, शूल, पाश और चक्र सुशोभित हैं।

वही जगत् जननी महासरस्वती के ध्वनि रूप में विराजमान है तथा सप्त-मातृकाओं के रूप में अवतरित होकर, वर्णात्मिका देवी बन कर, वर्णों को आकार प्रदान करने वाली तथा उनमें युगल रूप प्रदान करके, उन्हें ध्वनित करती है। उसी का नाम ध्वन्यालोक है। यही प्रणव है, बीज रूप से 'एं' है, तथा प्रकाश है।

वागुद्भूता पराशक्तिर्या चिद्रुपा पराभिधा।
वन्दे तामनिशं भक्तया श्रीकण्ठार्धशरीरिणीम्॥

वैदिक वाक् से उद्भूत पराशक्ति ही चित् रूपिणी परा-अभिधामयी वाग्वादिनी जो है, वही श्रीकण्ठ शिव के अर्ध शरीर में नित्यलीन होती हुई, उसी (चक्रेश्वर) का अभिन्न अङ्ग है। भक्तजन अहोरात्र उसी पराशक्ति सप्ताक्षर-वर्णात्मिका देवी की वन्दना करते हैं।

धनुष, सायक—पंखीला बाण, इन आयुधों को धारण करने वाली, बादलों में से निकलते हुए चन्द्रमा के सदृश शीतल सुन्दर, मुख वाली, गौरी-गौर वर्णा पार्वती के देह से उत्पन्न हुई, त्रिनेत्रधारी, संसार की अधिष्ठात्री देवी, शुम्भ आदि दैत्यों को नाश करने वाली है। वही सप्त मातृकाओं में विस्तृत शब्द शरीर धारण करने वाली है। वही शब्दमयी वर्णात्मिका है तथा **'ॐ, ऐं ह्रीं श्रीं ओ३म् वकार रूपायै नमः'**

मूल मंत्र धारण करने वाली है। मालिनी के रूप में नफकोटि वर्णात्मिका है। अन्ततः **ओ३म् ऐं, ह्रीं, श्रीं श्रीमद्राजराजेश्वर्यै नमः** से सुशोभित है। यही बीजाक्षर है।

प्रायः ब्राह्म मुर्हूत्त में उठकर, नित्य आवश्यकताओं से निवृत्त होकर साधक श्री सप्तमातृका रूपिणी शारिका की परिक्रमा घर से निकल कर आरम्भ करते हैं।

सर्व प्रथम साधक शारिका पर्वत की प्रदक्षिणा आग्नेय कोण से आरम्भ करके-श्री गणेश की शिला को 'हेमजासुतं-अम्बुज-गणेशं-ईश नन्दनम्' से अर्घ्य, दुग्ध, पुष्प, जल इत्यादि चढ़ाते हैं, फिर प्रदक्षिणा करते हुए सप्तर्षि शिला से होते हुए कालिका देवी के प्राङ्गन में, योग मुद्रा में बैठकर '**माया कुण्डलिनी**' का स्त्रोत्र पाठ पढ़ते हैं। वहाँ चार चिनारों की परिक्रमा करते हुए देवी आँगन में नत मस्तक होते हुए चक्रेश्वर के सिद्ध पीठ पर ध्यानस्थ होते हैं। स्वयंभू-शिला सप्तबीजाक्षरों से प्रज्जवलित शक्ति, भोग और मोक्षप्रदायिनी है। तत्पश्चात् उत्तर में षोडशमातृकाओं '**अ से अः**' के शब्द शरीर में अवस्थित होकर **श्रीशारी** एवं सिद्ध लक्ष्मी की शिलातन-शिलात्म स्वरूप को प्रणाम करके अपने आप को कृत्तकृत्य समझते हैं। वामदेव ऋषि बहुरूप मंत्र के दृष्टा का पूर्व दिशा में स्थान है। आगे परिक्रमा करते हुए श्री हनुमान जी का गर्भगृह आता है। नील वर्ण-आभा से वरूणात्मिका कुण्डवासिनी भगवती पोखरीबल जल स्त्रोत, परम पावनी सती का ही प्रतिरूप है। अन्ततः हाटकेश्वर भैरव का नमन करके एक प्रदक्षिणा पूर्ण होता है।

''त्रितयाभोक्ता वीरेशः''

शिव भट्टारक वीरों में सर्वश्रेष्ठ हैं, जो हाटकेश्वर भैरव से अभीप्सित है। वह स्वयं भैरवाधिपति कहलाते हैं। वही हाटकेश्वर का श्रीकण्ठ रूप हैं, जहाँ हिरण्यमयी भू-सम्पति सुमेरू पर्वत की एक श्रृंखला है। चूंकि श्री शारिका भोगदायिनी भी है और मोक्ष दायिनी भी। हाटकेश्वर भैरव इस क्षेत्र में सदा शारिका देवी की सेवा में विराजमान रहते हैं। जिसका ध्यान श्लोक इस प्रकार है।

सिन्दूर कान्ति-मसितभरणां त्रिनेत्रां
विद्याक्षसूत्र मृगपोतवरं दधानां ॥
पार्श्व स्थितां भगवतीमपि कांचनाङ्गीं
ध्याये कराब्जधृत पुस्तक वर्णमालाम्।

—स्थिति न्यास मंत्र

सिन्दूर की कान्ति धारण करने वाली, श्वेत वस्त्रों से सुशोभित, त्रिनेत्रधारी (सूर्य, चन्द्र, अग्नि) जिसके नेत्र हैं। अक्षमाला को धारण करने वाली, विद्या स्वरूपिणी, अभय प्रदा, सर्वत्र अङ्कुरित, कांचन अङ्गवाली है जो, तथा पास में ही वास है जिसका, ऐसी मङ्गलमूर्ति का मैं ध्यान करता हूँ, जो वर्णमाला की पुस्तक को धारण करती रहती है।

'शोडष-मातृका देवी'—''सैव स्वं वेत्ति परमा, तस्या नान्योऽस्ति वेदिता''

अर्थात् उस परमा शक्ति को जानने वाला दूसरा कोई नहीं है, वह स्वयं ही अपने आप को जानती है। वह स्वयं अपना ही तत्त्व है। अतः सर्वज्ञ है। वही आत्मशक्ति का अनुसंधान है तथा विश्वेश्वरी भी है।

अष्ट भैरवों में हाटकेश्वर भैरव सप्तम भैरव हैं—

भैरवों की परिक्रमा इस प्रकार है :

१. आनन्देश्वर भैरव, २. तुष्करा‍ज भैरव, ३. मंगलेश्वर भैरव ४. पूर्णराज भैरव, ५. बहुखातकेश्वर भैरव, ६. जयक्सेन भैरव, ७. हाटकेश्वर भैरव, ८. वेतालराज भैरव। इसके अतिरिक्त श्री शीतलनाथ भैरव, अर्द्ध भैरव कहलाते हैं।

नैवेद्य समर्पण के समय अपने अपने इष्ट भैरव का 'इह रष्ट्राधिपतये नमः' कहकर हरिद्रन्न (पीले चावल) के थोड़े से अंश शिवलिङ्गाकार का बनाकर समर्पित करते हैं। वही कश्मीरी भाषा में 'तहॉरी म्यट' है।

इस प्रकार साधक के लिये यह आवश्यक है कि वह दक्ष हो, जितेन्द्रिय तथा आस्तिक हो, बह्मनिष्ट हो तथा सगुण पूजा में् प्रवृत्त हो। पंचदशोपचार पूजा के अंग ये हैं— जो एक साधक प्रयोग में लाता है।

१. आसन, २. स्वागत, ३. पाद्य, ४. अर्घ्य, ५. जल, ६. मधुपर्क, ७. स्नान, ८. वसन (वस्त्र) ९. आभूषण, १०. गन्ध, ११. पुष्प, १२. धूप, १३. दीप, १४. नैवैद्य, १५. नमन।

निर्गुणः परमात्मा तु त्वदश्रयतया स्थितः।
तस्य भट्टारिकासि त्वं भुवनेश्वरी भोगदाः

—(शक्ति दर्शन)

हे शारिके! निगुर्ण परमात्मा भी शक्ति के अधीन है। उस शिव भट्टारक के होते हुए भी तुम ही भुवनेश्वरी भोग को प्रदान करने वाली हो।

श्री शारिका देवी की परिक्रमा करते करते साधक इन्द्राक्षी का पाठ करते है, या किसी भी शाक्त मंत्र का जाप करते हैं। मुख्यतः इस प्रकार के ध्यान श्लोक का स्मरण करते हैं—

माया कुण्डलिनी क्रिया मधुमती काली कला मालिनी।
मातंगी विजया जया भगवती देवी शिवा शाम्भवी॥
शक्तिः शङ्करवल्लभा त्रिनयना वाग्वादिनी भैरवी
ह्रींकारी त्रिपुरा परापरमयी माता कुमारीत्यसि॥

(पञ्चस्तवी १-१८)

ॐ ऐं आत्मतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा।
ॐ ऐं ह्रीं क्लीं सर्वतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा।
ॐ ह्रीं विद्यातत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा।
ॐ क्लीं शिवतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा।

सप्ताक्षरमयी देवी

सप्तक शब्द पर ......,

सप्तानां समूहः, सप्तक, सात के समूह को सप्तक कहते हैं। **सप्तकी—सप्तभिः स्वैरः इव कायति शब्दायते।** सप्त स्वरों से कायित—शब्द शरीर पर आधारित वर्णमाला को सप्तकी कहते हैं। यही सप्तकी की परिभाषा है। अतः शब्द के सात गुण होने के कारण सप्तधा शब्द का विवेचन किया जाता है। इसके कारण से ही सप्तमातृका विद्यमान है, जिसमें नैसर्गिक स्थिति एवं विकृत स्वरूप के पश्चात् भी अपना चैतन्य पुनः प्राप्त करने की क्षमता होती है। मूलधातु से शब्द बनते हैं। सृष्टि रचना में शब्द का माहात्म्य महत्त्वपूर्ण प्रशंसा से ओतप्रोत है। सामवेद में कहा गया है :

अहं प्रवदिता स्थाम् (६११)

एक मानव की प्रार्थना है—कि मैं सर्वत्र प्रगल्भता से बोलने वाला बनूँ। यजुर्वेद में कहा गया है—

वयं स्याम सुमतौ (११-२१)

हे ईश्वर! हमें सद्बुद्धि प्रदान करें।

भगवान श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं—नक्षत्राणामहं शशी (गीता अध्याय १०, श्लोक २१) अर्थात् नक्षत्रों में चन्द्रमा है। इसी पृष्ठभूमि में आगम शास्त्र के आचार्यों ने भी सप्तमातृकाओं की शब्द शैली में चन्द्रबिन्दु की ध्वनि को महत्त्व दिया है, जैसे—

ऐं, ह्रीं, क्लीं, श्रीं, अं, कं, चं, टं, पं एवं शिव-शक्ति के एक रूप में **फ्रां, शां, कं, रं, यं, लं** तथा **'क्ष, त्र, ज्ञ'** को संयुक्त अक्षरों में महत्व दिया है। **'क्षां श्रेत्राधिपतये नमः'** 'रां **राष्ट्राधिपतय** नमः' शारदा सहस्त्र-नाम में **'हस्त्रौं'** शब्दों के बीज पर आधारित ध्वनियों का आह्वान किया जाता है। वास्तव में बीजाक्षर ही पराशक्ति का सारभूत शरीर अर्थात् **'हृदय'** है। हृदय भाव प्रदान चैतन्य है।

सप्तमातृकाओं का स्वरूप

सप्तमातृकाएं सुन्दरता की अधिष्ठात्री देवियाँ हैं। कारण यूँ है ....., शाश्वत सुन्दरम् का भाव सौन्दर्य है। पराभक्ति में भी साधना, वास्तव में सौंदर्य है तथा सौंदर्य जीवन की परिभाषा है। सौंदर्य में गति है, प्रकाश है। प्रकाश ही शिव है, शिव सदा अन्तःकरण की शुद्धता में वास करते हैं। निर्मल मन की प्रसन्नता के साथ-साथ एक भक्त अथवा साधक निर्गुण-निराकार, निर्विशेष में लीन होकर परात्पर तत्त्व जानने की प्रक्रिया में अपने मन को केन्द्रित करता है। यही सौम्य चेतना है। अपनी भाव प्रक्रिया से उसी निराकार को सौंदर्य के आंचल में देखने के लिए लालायित हो जाता है। वही **सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्** की अवधारणा है। सगुण-साकार दिव्य लीलामयी शुद्ध-तत्वमयी भगवती माता चक्रेश्वरी को एक साधक 'नाद' अन्तर्मुंखी शब्द-ध्वनि से पुकार-पुकार कर शैव दर्शन के ३६ तत्त्वों के आधार पर अवरोहण में देखता है। उसके लिए विलास, उल्लास में परिणत हो जाता है। शाक्तोपाय के अर्न्तगत निगुर्ण, निष्कला संवित् शक्ति सगुण होकर सकला, मध्यमा-प्रतिपदा का रूप धारण करती है। यही सप्तमातृका का बीजतन्तु है। सप्तमातृका सिद्धांत श्रीचक्र का वर्णात्मिका स्वरूप है। श्रीचक्र-चक्रेश्वर की अवधारणा है—

षट्त्रिंशत्तत्त्वगर्भाढ्या परमाद्यर्णगर्भिणी।
सा पुंभाव परं बिन्दुं प्रविश्य ध्वनितां गता॥

—शैवागम

३६ तत्त्वों के गर्भाशय में स्थित, आद्या परमाशक्ति बिन्दु रूप में अवस्थित होकर, 'पुँ' भाव में प्रवेश करती हुई ध्वनि स्वरूप बन जाती है। ध्वनियाँ तरङ्गित होती हैं। रेखाओं द्वारा उसका रेखांकित स्थान नव चक्र पटल स्वरूप है। उसका निवास कहाँ है—

बिन्दु त्रिकोण-वसुकोणदशार युग्म मन्वश्रनागदल संयुक्त षोडशारम्।
वृत्तत्रयं च धरणी सदन त्रयं च श्रोचक्रराजमुदितं परदेवतायाः॥

सप्तमातृकाओं का वास ''मन्वश्रनागदल संयुत'' में निहित है। इन चौदह त्रिकोणों में क्रमशः मातृकाओं का भ्रमण-प्रतिपदा से लेकर सप्तमी तक, अष्टमी को मिलन, पुनः नवमी से पूर्णिमा तक चलता रहता है। इसी

कारण शुक्ल अष्टमी को कश्मीर के शक्ति उपासक चैतन्य स्वरूपिणी श्री महाराज्ञी देवी का व्रत, पूजा, अर्चना करते रहते हैं। यही चक्र परिक्रमा कहलाई जाती है। चौदह त्रिकोण महेश्वर सूत्र में गर्भित हैं।

आगम शास्त्रों के अनुसार मातृका ही माता होती है। अतः उपनिषद् की वाणी में कहा गया है—'मातृ देवो भव'। माता को देवता जान लो। यह माता भौतिक माता तो है ही, परन्तु शैक्षणिक क्षेत्र में गुरूमाता, आध्यात्मिक क्षेत्र में जगन्माता कहालाई जाती है। आध्यात्मिक परिधि में उनका सप्तसमूह होता है, अतः उन्हें सप्तमातृका ही कहते हैं। उनका ध्यान एकान्त भाव में एकात्म सूत्रात्मिका ग्रंथि है, जिसे काश्मीरी भाषा में 'काहनेथुर' और 'दिवगोन' कहते हैं। दिव्यगुण के होम में **दिवत गुल्य** के नाम से सप्तमातृकाएँ आमंत्रित की जाती है। दिवतु शब्द मूलतः 'दिव्य' अर्थात् दैवी गुणों से युक्त, प्रभावशाली, प्रकाश पुंज से पूर्ण है, और गुल्य का मूल स्वरूप गुलः, जिसका शाब्दिक अर्थ संस्कृत भाषा में गुड अर्थात् शर्कर है। यह शुभ वेला का शगून कहलाता है।

कश्मीर की शाक्त पद्धति के अनुसार सप्तमातृकाएं श्रीचक्रेश्वर शिला रूपिणी शारिका के साथ ही सदा कार्यरत रहती हैं, और भक्तों का मार्ग दर्शन प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कराती है। शैव शास्त्र के अनुसार भी सप्तमातृकाओं का महत्व **चक्रराज-प्रिय-बिन्दु** से है।

''श्री चक्र प्रिय बिन्दु तर्पण परा श्री राज राजेश्वरी''

श्री चक्र के मध्य बिन्दु में ही श्री राजराजेश्वरी, जिसका मूल मंत्र **ऐं क्लीं सौः** है, उस पर मात्र जल का तर्पण एवं अभिषेक करने से पराशक्ति वाङ्मयी शक्ति की साक्षात् अनुभूति होती है। पूजा में तर्पण का महत्व माना गया है। तर्पण भी तीन प्रकार के हैं—ऋषि, देव और पितृ तर्पण। तर्पण पञ्चयज्ञों में एक यज्ञ है, जिसका शाब्दिक अर्थ तृप्त करना है।

देवी माहात्म्य के अनुसार अष्टमातृका का स्वरूप भी वन्दनीय है। यह अष्ट मातृका—**१. ब्राह्मी, २. वैष्णवी, ३. माहेश्वरी, ४. ऐन्द्री / इन्द्राणी, ५. कौमारी, ६. वाराही, ७. चामुण्डा, ८. नारसिंही** कहलाती है।

कश्मीर पद्धति में भैरवी की पूजा, सप्तमातृकाओं के अन्तर्गत ही आती है। अतः चक्रेश्वर के साथ वीरभद्रा भी पूजी जाती है। समष्टि चक्षु

दिव्य रूप का सृष्टा है, और व्यष्टि चक्षु उसका भोक्ता है। अनन्त स्वरूपा पराशक्ति विचित्र विश्व की विमर्श शक्ति है। यही सप्तमातृका की 'वाक्शक्ति' है, एवं आत्म प्रकाश है। वाक् शब्द सारगर्भित है।

शब्दानां जननी त्वमत्र भुवने वाग्वादिनीत्युच से,
त्वतः केशव वासव प्रभृतयोऽ प्याविर्भवन्ति स्फुटम्।
लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरमे ब्रह्मादयस्तेऽप्यमी,
सात्वं काचितऽचिन्त्य रूप महिमा शक्तिः परा गीयसे॥

—लघुस्तवः १५

शब्दों की जननी तुम हो। इस लोक में वाग्वादिनी नाम से जानी जाती हो। अतः शारदा-सरस्वती हो। महाविद्या, महावाणी, भारती, वाक्, आर्या, ब्राह्मी, कामधेनु, वेदगर्भा तथा धीश्वरी तुम्हारे ही नाम है। (प्राधानिक रहस्य के अर्न्तगत शब्द शक्ति का महान् प्रभाव है) केश्व-विष्णु, वासव-इन्द्र आदि देवता तुम्हारे ही कारण प्रकट होते हैं। कल्प के अन्त में त्रिदेव-ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी तुम्हारे ही भीतर लय हो जाते हैं। वही तुम अचिन्त्य-रूपमयी शक्ति महिमामयी शब्द मातृका कहलाती हो।

सप्तमातृकाएं आद्या प्रकृति, मूलभूता शक्ति, तीन गुणों से सम्पूर्ण होने के कारण रूद्रहृदयोपनिषद् में भी वन्दनीय है—

द्वे विद्ये वेदितव्ये हि परा चैवापरा च ते।
तत्रापरा तु विद्यैषा ऋग्वेदो यजुरेव च॥
सामवेदस्तथाऽअथर्ववेदः शिक्षा मुनीश्वर।
कल्पो व्याकरणं चैव निरूक्तं छन्द एव च॥

समस्त वैदिक वाङ्मय-वेदाङ्ग, कल्पशास्त्र, व्याकरण, निरूक्त, छन्द रूपिणी विधाएं, लौकिक अर्थात् जगत हित के लिए हैं, वास्तव में परापरा विद्या ही सप्तमातृका का स्वरूप है।

सप्तमातृका चक्रम्, श्रीचक्रेश्वर का ही अणुरूप तथा त्रिगुण स्वरूप है।

पुष्पार्चना

चक्रेश्वर के भीतर अ वर्ण अन्तर्याग जाना जाता है। और **अः** विस्मय या बहिर्याग कहलाया जाता है। अति सौम्य ध्वनियाँ मध्यमा, पश्यन्ती, परा-सूक्ष्म तरङ्गवत समस्त ब्रह्माण्ड को आच्छादित करती है। यही वर्णात्मिका चक्रेश्वरी श्रीशारदा, सर्वमङ्गला एवं अमृत कला से पूजित होती है।

१. वाग्देव्यै नमः, २. वागीश्यै नमः, ३. सरस्वत्यै नमः, ४. महेश्वर्यै नमः, ५. अनलप्रियायै नमः, ६. वेण्यै नमः, ७. विद्याधर्यै नमः। (यह वास्तव में वर्णों की उद्भव मातृकाएं हैं।)

वाग्देवी वागीशी, सरस्वती, माहेश्वरी, अनल प्रिया, वेणी, विद्याधरी चक्रेश्वर का सप्तम चक्र है। **अभीष्टसिद्धि मे देहि शरणागतवत्सले।** मुझे अभीष्ट सिद्धि प्रदान कीजिए क्योंकि तू शरणागत वत्सला है **ॐ ह्रीं क्लीं सौः नमो नमः। मातृका भगवत्यै ह्रीं स्वाहाः ह्रीं ॐ।**

(यह मातृकाओं का निवेदन मंत्र, अर्चना एवं जप के लिए है)

अथ श्री सप्तमातृका रूपिणी शारिका भगवती स्तुतिः

बीजैः सप्तभिरूज्जवला कृतिरसौ या सप्त सप्ति द्युतिः।
सप्तर्षिप्रणतांघ्रि पंकजयुगा या सप्तलोकार्तिहृत॥
काश्मीर प्रवरेश मध्यनगरे प्रद्युम्नपीठे स्थिता।
देवी सप्तक भगवती श्री शारिका पातु नः॥

सप्त बीजशक्ति—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ल्ॠ, ए, ऐ का ह्रस्व-दीर्घ ध्वन्यालोक से जाज्वल्यमान होती हुई, प्रकाश पुञ्ज से युक्त, सप्तऋषियों—गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, जमदग्नि, कश्यप, वसिष्ठ तथा अत्रि द्वारा अर्चित एवं प्रणमित देवी, जो सप्तलोकों—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, एवं पाताल लोकों के हित का कारण स्वरूप है, उस देवी को नमन हो। **कश्मीर प्रवरेश मध्य नगर प्रद्युम्नपीठ-चक्रेश्वर स्थित, देवी स्वरूपा, सप्तक-बीजाक्षरों से युक्त,** श्री शारिका हम सभी की रक्षा करें! ओ३म शान्ति।

सप्तमातृका रहस्यम्

तद्यथा ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा।

वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा सप्तमातरः॥

चिद्विमर्शरूपिणी 'श्री विद्या' एवं 'श्रीचक्रराज प्रिय-बिन्दु-चिद्-अग्निकुण्ड-सम्भूता' मंत्रमयी होकर एवं ईश्वरीय लीला से शरीर धारण करती है। तब आगम और निगम उसी महाविद्या का निरूपण करने लगते हैं। रुद्रयामल तंत्र में भगवान शिव कहते हैं—

'महाविद्या जगन्माता महालक्ष्मीः शिव प्रिया।
विष्णुमाया शुभा शान्ता सिद्धा सिद्ध सरस्वती॥
राजनीतिस्त्रयीवार्ता दण्डनीतिः क्रियावती।
सद्भूतिस्तारिणी श्रद्धा सद्गतिः सत्परायणा॥
वज्रायुधा वज्रहस्ता चण्डीचण्ड पराक्रमा।
गौरी सुवर्णवर्णा च स्थिति संहारकारिणी॥
षट्चक्रभेदिनी श्यामा कायस्था कायवर्जिताः।
सुस्मिता सुमुखी क्षामा मूलप्रकृतिरीश्वरी॥
सप्तधातुमयी मूर्तिः सप्तधात्वंतराश्रया।
देह पुष्टिर्मना पुष्टिरन्न पुष्टिर्बलोद्धता॥
औषधिर्वैद्यमाता च द्रव्यशक्ति प्रभाविनी।
वैद्यावैद्यचिकित्सा च सुपथ्यारोगनाशिनी॥
मषी च लेखनी लेखा सुलेखा लेखक प्रिया।
शंखिनी शंखहस्ता च जलस्था जलदेवता॥
मातृमण्डल-मध्यस्था मातृमण्डल-वासिनी।
माता मातामही तृप्तिः पितृमाता पिता-मही॥
सर्वतीर्थमयी मूर्तिः सर्वदेवमयी प्रभा।
सर्वसिद्धिप्रदा शक्तिः सर्वमंगल मंगला॥

भवानी सहस्रनाम परावाक् की चित्-शक्ति है। पराशक्ति ही महाविद्या एवं सप्तमातृका का रूप धारण करके मुक्ति और भुक्ति को प्रदान करने वाली है। सप्तमातृका वास्तव में श्रीचक्रेश्वर में निहित ध्वनि है, जिसका स्रोत अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ है, तथा अ, समातृका का रूप धारण करने पर अः बन जाता है। **विसर्ग** शिव-शक्ति प्रदान है।

शाक्त ग्रथं में कहा गया है—

एकैव शक्तिः परमेश्वरस्य भिन्नाः चतुर्धा व्यवहार काले।

पुरुषेषु विष्णो भोगे भवानी समरेश्च दुर्गा प्रलयेश्च काली॥

शक्ति एक ही है, परन्तु भिन्न-भिन्न रूप है। वही वाग्वादिनी भी है। स्वतंत्र शक्ति की अधिष्ठात्री देवी है। वर्णों में समाहित है तथा संगीत के सात सुरों में ध्वन्यालोक से मंत्र मुग्ध कर देती है। छन्द-अनुष्टुप्, जगती, गायत्री, उष्णिक्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, सप्तमातृकाओं का ही छन्द स्वरूप है।

यही सप्तामतृकाएं—**ब्राह्मी, वैष्णवी, माहेश्वरी, कौमारी, ऐन्द्री, वाराही, नृसिंही है।** ये दैत्यदलन के लिये दिव्य-रूप को क्रियान्वित कर लेती है।

वास्तव में सप्तमातृकाएं ही **विष्णु-व्याप्त चराचर** एवं विस्तृत रूप में शैव दर्शन के आरोहण द्वारा पृथ्वी तत्त्व से आरम्भ होकर पच्चीसवें तत्व में पुरुष तत्व की वैष्णवी शक्ति है। यही मातृकाएं भोग में **'भवानी-अस्ति', 'सा-अस्ति'** का सम्पादन करती हैं। सामरिक अवस्थिति में दुर्गा के प्रादुर्भाव को जन्म देकर युद्ध रणक्षेत्र में आयुधों के समेत-सवाहन दैत्य दमन एवं नाश करने में तत्पर रहती है। परन्तु प्रलय काल के समय यही शक्ति काल तत्त्व रूपी अवरोहण 'शिव' तत्व को लाँघती हुई, ग्यारहवें तत्व 'काल' को भी प्रलय की अवधि में समेट लेती है। सत्व, रजस् एवं तमस् इन तीनों गुणों को भी प्रलय के आँचल में विलय कर लेती है। इस विलय का नाम **संधि** है। अतः

अ + अ का दीर्घ आ, इ + ई / ई का ई, उ + ऊ का ऊ, ॠ + ॠ का ॠ, लृ + लृ का ल्ऋ, अ + इ का ए, अ + उ = ओ अ + ए = ऐ, अ + ऋ = अर् बन जाता है।

प्रत्येक मातृका, जो वर्णात्मिका है, उसका अपना शब्द शरीर होता है। संख्यावाचक शब्दों में भी सामान्यतया—''अनुदात्तौ ससितौ'' स्वर होता है। जैसे नवदुर्गा में प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, संख्या में शक्ति का ही प्रतिपादन होता है। **शून्य** से लेकर **नौ** संख्या तक शक्ति सप्तमातृकाओं के समेत प्रकट होती है। श्रीचक्रेश्वर का अपना वैभव-अष्टादशभुजा शारिका है, उसी के दिव्य रूप से अवतरित होती है। इसीलिए सप्तऋषियों का वास भी चक्रेश्वर के पास है। नैऋत् तथा वायव्य कोण में सप्तऋषि शिला है।

भगवान शंकर की अभिन्न शक्ति भवानी रूप में अवतरित होने के लिए मातृकाओं का रूप धारण करती है। शाक्त धर्म में अन्तर्याग साधना की कुञ्जी 'सिद्धकुञ्जिका स्तोत्रम्' में है। जिसमें **अं कं चं रं तं लं** आदि वर्णात्मिका का स्वरूप ध्वनि रूप में प्रकाशित होता है। इस स्तोत्र में दशमहाविद्या का, नवार्णविद्या का, कादि विद्या एवं सप्तमातृका का रूप स्वर, व्यञ्जनों में मुखरित होता है। आगम के अनुसार देवी की उपासना ही **बहिर्याग** की उपासना है।

मातृका पूजन में 'स्वप्राण प्रतिष्ठा' इस प्रकार वर्णित है :

ॐ अस्य स्वप्राणप्रतिष्ठामंत्रस्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ऋषयः ऋग्यजुः सामानि छन्दांसि प्राणशक्तिर्देवता आँ-बीजं, ह्रीं-शक्तिः, क्रों कीलकं स्वशरीरे चण्डिका देवता प्राणप्रतिष्ठापने विनियोगः॥

ॐ बीजाय नमो गुह्ये ॐ ङं ह्रीं शक्तये नमः पादयोः। ॐ क्रों कीलकाय नमः सर्वाङ्गे। इति ऋष्यादि न्यासः॥

अथ कर न्यासः ॐ कं खं घं गं नाभौ वायुवाग्नि वाभूर्म्यात्मने अंगुष्ठाभ्यां नमः। हृदयायनमः ॐ ञं चं छं झं जं शब्द स्पर्शरूप रस गंधात्मने तर्जनीभ्यान्नमः (शिरसे स्वाहा)। ॐ णं टं ठं ढं डं श्रोत्र त्वक् नयन जिह्वा प्राणात्मने मध्यमायां नमः (शिखायै वषट्)। ॐ नं तं थं धं दं वाक्पाणिपायूपस्थात्मने अनामिकाम्यां नमः, कवचाय नमः (अस्त्राय फट्)। इति न्यासः।

अथ मस्तकादरारभ्य हृदयान्तं (क्रों) इति सृणि बीजं स्मरेत्। ॐ यं त्वगात्मने नमः। ॐ रं असृगात्मने आत्मने नमः। ॐ लं मांसात्मने

नमः। ॐ वं मेदात्मने नमः। ॐ शं अस्थि आत्मने नमः। ॐ यं मज्जात्मने नमः। ॐ सं शुक्रात्मने नमः। ॐ ह्रौं ओजात्मने नमः। ॐ हं प्राणात्मने नमः। ॐ सं जीवात्मने नमः। इति दृष्ट्या हृदि विन्यसेत।

ॐ यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं इति मूर्द्धादि चरणावधि व्यापक कुर्यात्। ॐ मण्डकादि परतत्वान्त पीठदेवताम्यो नमः। ॐ जयादि शक्तिभ्योः नमः। इति नत्वा। ॐ आँ ह्रीं क्रों पीठाय नमः। प्राणशक्ति देव्यै नमः। अथ ध्यानम्। मण्डक का शाब्दिक अर्थ कश्मीरी भाषा में देवता के निमित्त पकाया हुआ अन्न है।

ॐ पाशं चापा सृक्कपाले श्रृणीषूञ्छूलं हस्तैर्विभ्रतीं रक्तवर्णाम्।

रक्तोदन्वत्पोत रक्ताम्भुजस्थां देवीं ध्याये प्राणशक्ति त्रिनेत्राम्।

इति ध्यात्वा हृदयादि करं निधायः—

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हंसः।

ॐ मम शरीरे चण्डिका देवतायाः प्राणाः/ इह स्थितः। प्राणः।

ॐ आं क्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हं सः

ॐ मम शरीरे चण्डिका देवतायाः जीव इह स्थितः जीव।

ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हौं हं सः

ॐ मम शरीरे चण्डिका देवतायाः सर्वेन्द्रियाणिवाङ् मनश्चक्षुः श्रोत्र जिह्वा घ्राण पाद पायु उपस्थाणि इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ॥३॥

इति वारत्रयेण स्वशरीरे चण्डिका देवतायाः प्राणान् प्रतिष्ठाप्य।

ततः ॐ इति प्रणवेन (१५) पञ्चादशावृत्तिं कृत्वा अनेन मम देहस्था चण्डिकायाः गर्भाधानादि पञ्चदश स्कारान्संपादयामि॥

एवं प्राणान्प्रतिष्ठाप्य। देवी भूत्वा देवी यजेत्।

चण्डिकारूपमात्मानं भावयेदिति प्राण प्रतिष्ठा॥

अन्तर्याग-बहिर्याग आदि अनुष्ठान से बीजाक्षरों का आगमिक स्वर सिद्धान्त स्पष्ट होता है। ऋग्वेद में स्वर शब्द का प्रयोग शब्द-वाक् अर्थ में हुआ है, जबकि आगम में यह वाक् देवी (वाग्देवी) का शब्द शरीर है। शतपथ ब्राह्मण में स्वर शब्द का प्रयोग '**श्री**' के अर्थ में माना

जाता है। मंत्रों के पद पाठ की शुद्धता स्वर अधीन ही है। वैदिक निरूक्त (१-६-१८) से भी सिद्ध होता है।

निर्गुणः सगुणश्चेति शिवो ज्ञेयः सनातनः।

निर्गुणः प्रकृतेरन्यः सगुणः सकलः स्मृतः।

सच्चिदानन्दविभवात् सकलात्परमेश्वरात्।

आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद्बिन्दुसमुद्भवः॥

शिव परमब्रह्म है। सनातन है। निगुर्ण भी है और सगुण भी। माया से उपहित / आवृत्त होकर सगुण कहलाया जाता है तथा माया से अनुपहित होकर निर्गुण-निराकार है। सत्-चित्-आनन्द परब्रह्म के माया से उपहित होने पर ही शक्ति का आविर्भाव होता है। उसी शक्ति से नाद अथवा महत् तत्व उत्पन्न होता है। उसी नाद से बिन्दु अथवा अहङ्कार तत्त्व उत्पन्न होता है। यही शक्तिवाद की दार्शनिक व्याख्या है। सूक्ष्म दृष्टि से यदि देखा जाए तो शक्ति साधना सप्तमातृका साधना ही है।

अहंकार शब्द **अ** और **ह** का पारस्परिक सम्बंध है, जिसमें अ अक्षर ब्रह्म है, और ह शक्ति बीज है। स्पन्दन हेतु ँ चन्द्र बिन्दु है—जो **अहँ** कहलाया जाता है। इसी अहँ में सारी वर्णमाला गर्भित है। गर्भ अवस्था का नाम ही 'शिवशक्ति एक रूपः' है। एक नाम रूप के चित्त स्वरूप होने पर नाद स्फुरित होता है और नाद से बिन्दु उत्पन्न होता है। उसी बिन्दु से दश महाविद्या और चंक्रराज श्रीचक्र, नव दुर्गा उत्पन्न होती है। जिसका बीज मंत्र कादि विद्या के अनुसार **क ए ई ल ह्रीं—ह स क ह ल ह्रीं - स क ल ह्रीं** कहलाया जाता है। त्रिपुरा रहस्य में इसका पूरा विवरणन मिलता है।

श्रीचक्र प्रिय बिन्दु तत्परा श्री राजराजेश्वरी मंत्रमयी शक्ति इस का उदय है। इसी के अन्तर्गत दश महाविद्या का प्रकटीकरण होता है। महा निर्वाण तंत्र के आचार्यों ने सम्पूर्ण शब्दराशि को आगम-निगम भेद से शब्द ब्रह्म या सत्य स्वरूप नित्य शब्द को परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी में आत्मसात किया। इसी आर्ष चिन्तन के अनुसार 'वाक्' - 'अनुष्टुप्' कहलाती है। अनुष्टुप् वाक् से क-च-ट-त-प आदि सप्त स्वरवाक् का विकास होता है। कहा गया है : **'स्वरोऽक्षरम्'**—वर्णमाला के स्वर अक्षर—

Immutable Phonemes हैं। शब्द का अर्थ भी अक्षर है। शास्त्र प्रमाण है—

"शाब्दे ब्रह्मणि निष्णात: परं ब्रह्माधिगच्छति"।

बिना स्वर के व्यञ्जन का उच्चारण किया नहीं जा सकता है। भौतिक विद्या Physical Sciences का स्रोत सौरमण्डल (Solar System) है। इसी रहस्य को समझाने के लिए दिव्य प्रश्नोत्तरी का नाम आगम शास्त्र है। आगम शास्त्र पृथ्वी को मूलतत्व मानता है। इसीलिए नवदुर्गा में शैलपुत्री का स्थान पहले माना जाता है। शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी तथा सिद्धिदात्री योग के सोपान हैं, चेतना के केन्द्र हैं, विकास के पटल हैं। नवदुर्गा के समावेश से सप्तमातृकाओं का प्रादुभार्व भी हुआ है।

मातृकाओं को योगबल के द्वारा जाना जाता है। इस का प्रत्यक्ष प्रमाण आर्षमन की अवधारणा है। गुरु की कृपा, गुरु के सान्निध्य में रहना, माता सरस्वती की असीम कृपा से परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी का आविर्भाव होता है।

मातृकाओं का सम्बंध लिपि-अक्षर ज्ञान से है। अत: अक्षर को मातृका अक्षर की संज्ञा दी जाती है। उस भागवद्मुहूर्त्त में गुरु **'ओं स्वस्ति सिद्धम्'** का सारस्वत मंत्र गुरु द्वारा शिष्य को दिया जाता है। शारदा सहस्रानाम में **'ओ** स्वस्ति सिद्धम् की व्याख्या ग्यारह सौ नामों में की गई है, शतोत्तर सहस्रनाम शारदा स्तोत्रम् एक सारगर्भित ग्रन्थ है, जिसमें भैरवी और भैरव का ही सँवाद 'ओं स्वस्ति सिद्धम्' पर केन्द्रित है। **कुल** कौलिन्यै के उपरान्त, श्मशान भैरव्यै, काल भैरव्यै, शिव भैरव्यै, स्वयंभू भैरव्यै, विष्णु भैरव्यै, सुर भैरव्यै, रूरू भैरव्यै, शशाङ्क भैरव्यै, सूर्य भैरव्यै, वह्नि भैरव्यै, शोभादि भैरव्यै, माया भैरव्यै, लोक भैरव्यै महोग्र भैरव्यै, समस्त भैरव्यै, देवी भैरव्यै, तथा मंत्र भैरव्यै नाम रूप गुणों के लिए गुढान्न (शर्कर इत्यादि से आहुति दी जाती है। (कश्मीरी भाषा में मीठा पुलाव, जिसमें केसर भी डाला जाता है।) इसी कारण इस महास्त्रोत्र में साक्षात्भैरव-सन्निम: भी कहा गया है।

मातृकाचक्र विवेक टीका में कहा गया है—

विचित्र विश्वोद्गमनानुच वर्ण क्रिया-तद् उन्मेष निमेष सम्भ्रमा विमर्श शक्तिः।

समस्त विश्व पराशक्ति की महत्ती इच्छा शक्ति है, जो विचित्र भी है, जिसकी सृष्टि में पराशक्ति अव-इच्छास्वरूप में अर्थात् शिव के शाम्भवी उपाय को देखने के लिए उन्मुख होती है। इसकी परा-अवस्था में इच्छा-शक्ति के पूर्ण होने पर ज्ञान शक्ति का उदय होता है। शक्ति की इस भूमिका में 'मध्यमा वाक्' आविर्भूत होती है। वास्तव में यही एक कारण बनता है, कि सृष्टि-जगत् तद्स्वरूप की अवस्था में लय हो जाता है।

द्वैत, द्वैताद्वैत, अद्वैत की त्रिविध पूजा-पद्धतियाँ ही शक्ति साधना के अन्तर्गत आती है। कालान्तर में उसी के द्वारा मातृकाओं के साथ तन्मय होने की प्रक्रिया शक्तिवाद के तन्त्रों में उपलब्ध है। दुर्गासप्तशती, ललितासहस्रनाम, भवानीसहस्रनाम, शारिका सहस्रनाम, राज्ञी सहस्रनाम, त्रिपुरसुन्दरी सहस्रनाम तथा अन्य शाक्तग्रंथों में मातृका न्यास के सम्बन्ध में यंत्र-मंत्र-तंत्र का समावेश है।

ॐ अस्य श्री मातृका मन्त्रस्य ब्रह्म ऋषि गायत्रीच्छन्दो मातृका सरस्वती देवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयः क्लीं कीलकं मातृका न्यासे विनियोगः।

ऋष्यादि का न्यास :

ॐ ब्रह्मणे ऋषये नमः शिरसि।
ॐ गायत्रीच्छन्दसे नमः मुखे।
ॐ मातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः हृदि।
ॐ हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः गुह्ये।
ॐ स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः पादयोः।
ॐ क्लीं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे।

इसके पश्चात् करन्यास

ॐ अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
ॐ इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा।
ॐ उं टं ठं ढं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां वषट्।
ॐ एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां हुम्।
ॐ ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठाभ्यां वौषट्।
ॐ अं यं रं लं वं षं सं हं लं क्षं अः —करतल कर पृष्ठाभ्याम् अस्त्राय फट्।

वर्णमाला के इसी क्रम से अङ्गन्यास

१. हृदयाय, २. शिरसि, ३. शिखायै, ४. कवचाय, ५. नेत्राय, ६. अस्त्राय को प्राणान्वित करना है।

इन न्यासों के अतिरिक्त अन्तर्मातृका न्यास शरीर के छः चक्रों में अक्षरों का न्यास किया जाता है। रेखाङ्कन निम्न प्रकार से है—
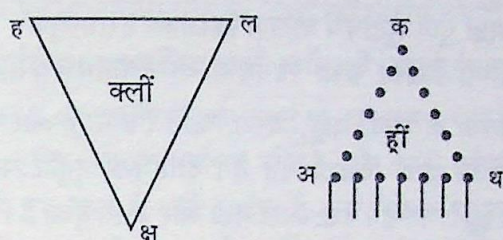
तीन रेखाएं क्रमशः अ, क, थ से आरम्भ होती है।

त्रिकोण के मध्य में सृष्टि-स्थिति-लयात्मक बिन्दुरूप पूर्णब्रह्म का स्वरूप है। यह ध्यान की अवस्था है, इसी ध्यान को अन्तर्मातृका न्यास भी कहते हैं।

वेदवर्णित सरस्वती तत्व में कहा गया है—

ऐमम्बितमे नदीतमे देवीतमे सरस्वति।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिम्ब नस्कृधि॥

ब्रह्मज्ञान के लिए दशश्लोकी सरस्वती की उपासना साधना का साधन है। उसका सार तत्व-अम्बितमे, नदीतमे, देवीतमे सरस्वती है। शारदा सरस्वती तथा सप्तमातृकाओं का रूप जगदम्बा श्री शारिका है। अम्बितमा का अर्थ मातृका तत्व है। 'मा' धातु का अर्थ शब्द एवं परिमाण है। नदीतमे! हे जलस्वरूपिणी देवी, पोखरी बल तुम्हारा ही स्वरूप है। देवीतमे! दिव्य स्वरूपा देवी, ब्रह्मवादिनी देवी, तुम ही 'सरस' पद की देवी सरस्वती हो। सृ धातु प्रसारण है, वही छन्द, अलङ्कार का अद्भुत संगम है।

बुद्धि सवासना कलृप्ता दपर्णं मंगलानि च
मनोवृत्ति विचित्राते नृत्य रूपेण कल्पिता।

मातृकाओं को मनोवृत्ति, विचित्र नृत्य (ताण्डव एवं आनन्द रूप) से कल्पित होकर, दर्पणवत बुद्धि एवं मांगलिक पदार्थों से सुशोभित करना चाहिए।

बहिर्मातृका न्यास

बहिर्मातृका न्यास में मातृका रूपिणी सरस्वती का ध्यान इस प्रकार है :

पञ्चाशल्लिपिर्विभक्त सुखदोः यत्संधिवक्षः स्थलां
भास्वन्मौलि निबद्ध चन्द्रशकलामापीनतुङ्ग स्तनीम्।
मुद्रामक्ष गुणं सुदाढ्यं कलशं विद्याञ्च हस्ताम्बुजै-
र्बिभ्राणां विशद प्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामश्रये॥

माता सरस्वती के मुख, बाहु, चरण, कटि (कमर) और वक्षःस्थल पचास स्वरवर्णों के द्वारा दिखाई देते हैं। दीप्तियुक्त मुकुट पर सूर्य के समान चन्द्रकला सुशोभित है। वक्षःस्थल बड़ा और उभरा हुआ है। शारदादेवी कर कमलों में मुद्रा, रुद्राक्षमाला, अमृत से परिपूर्ण कलश और पुस्तक धारण किये हुए हैं। प्रत्येक अङ्ग में दीप्ति ही दीप्ति है। वही त्रिनेत्रवाली वाग्देवी मातृका सरस्वती का ध्यान बहिर्रूप से धारण करता हुआ उनके आश्रय की समीक्षा करता हूँ।

माता सरस्वती का ललाट **अ**, आ मुख, **इ** नेत्र, ई नेत्र, **उ ऊ** कान ऋ ॠ नासिका, **लृ लॄ** कपोल, **ए** ओष्ठ, **ए** अधर **ओ** ऊपर के दान्त **औ** नीचे के दान्त, **अं** ब्रह्मरन्ध्र, **अः** मुख है। (वर्णमाला ही उसका श्रीमुख है।)

दाहिने हाथ के मूल में **क**, कोहनी में **ख**, मणिबन्ध में ग, अंगुलियों की जड़ में **घ**, अंगुलियों के अग्रभाग में **ङ** 1. क्रमशः बायें हाथ के स्थानों में **च छ ज झ ञ**, दाहिने पैर के मूल में **ट**, दोनों संधियों में **ठ ड**, अङ्गलियों के मूल में **ढ**, अग्रभाग में **ण** का वास है। इसी प्रकार बायें पैर के पांचों स्थानों में **त थ द ध न** स्थित है। दाहिने बगल में **प**, बायें में **फ** तथा पीठ में **ब**, नाभि में **भ**, पेट में **म**, हृदय में **य**, दाहिने कन्धे पर **श**, गले के ऊपर **ल** बायें कन्धे पर **व**, हृदय से दाहिने हाथ तक **स**, इसी प्रकार हृदय से बायें हाथ तक **ष**, हृदय से दाहिने पैर तक **स** हृदय से बायें पैर तक **ह**, हृदय से पेट तक **ल**, हृदय से मुख तक **क्ष**। **माता सरस्वती का मातृका न्यास**, हृदय से आरम्भ कर अन्त तक हथेली से ही न्यास करने की विधि है।

इसके उपरान्त '**संहार मातृका**' न्यास करने की विधि है। हृदय से लेकर मुख तक **ॐ क्षं नमः**, मुख से पेट तक **ॐ लं नमः**। इसी प्रकार उलटे हाथ चलते हुए ललाट तक पहुँचने की प्रक्रिया है। यही संहारमातृका न्यास कहलाया जाता है। नोट : संहार का अर्थ संचय/ एकत्रित होना है।

ध्यान श्लोक इस प्रकार है :

अक्षस्त्रजं हरिणपोतमुदग्रटङ्क, विद्यां करैरविरतं दधतीं त्रिनेत्राम्।

अर्द्धेन्दुमौलिभरणामरविन्दवासां, वर्णेश्वरीं -प्रणमः स्तनभानम्राम्।

वर्णमाला की अधीश्वरी का नमन हो, जो अपने चार हाथों में रूद्राक्ष की माला, हरिण-शावक, पत्थर फोड़ने की तीखी टाँकी तथा पुस्तक धारण किये हुए रहती है। जो त्रिनेत्रा है तथा जिसके मुकुट पर अर्धचन्द्र सुशोभित है, तथा शरीर का वर्ण रक्त है, कमल पर आसीन है। स्तनों के भार से झुकी हुई है। उसी वर्णेश्वरी का ध्यान करता हूँ। शास्त्रकारों ने सहांरमातृका न्यास संन्यासियों के लिए ही प्रमाण माना है। यह न्यास चार प्रकार से किया जाता है—**अक्षर, बिन्दुयुक्त अक्षर, विसर्ग सहित अक्षर, तथा बिन्दु-विसर्ग युक्त अक्षर**। कामना सिद्धि के लिये बीजाक्षर पहले प्रयोग में लाया जाते हैं। वाक्सिद्धि के लिये **ऐं**, ऋद्धि के लिये **श्रीं**, सिद्धि के लिये **क्लीं** का प्रयोग होता है। मंत्र प्रसादन के लिये **अः** जोड़ा जाता है। वर्णात्मिका देवी ही वर्णेश्वरीदेवी नाम से पूजित है।

पीठ न्यास :

देवता के निवासस्थान को पीठ कहा जाता है। ऐसा शंक्राचार्य का मत है जैसे ''**पीठेश्वरी जगन्मातरं वन्दे श्री शारिकां।**''

प्रद्युम्न शिखरासीनां मातृ चक्रोपशोभिताम्।

पीठेश्वरीं शिला रूपां शारिकां प्रणमाम्यहम्॥

शास्त्रों के अनुसार मन्त्र, भाव, प्राण तथा अचिन्त्य यंत्र दैवी शक्तियों के संयोग से, साधक के शरीर में ही पीठ उत्पन्न हो जाते हैं। इसी आधार पर हृदय में—आधार शक्ति, प्रकृति, कूर्म, अनन्त-आकाश, पृथ्वी, क्षीरसमुद्र, श्वेतद्वीप, मणिमण्डप, कल्पवृक्ष, मणिवेदिका, रत्न सिंहासन गठित होता है। न्यास आदि में **ॐ, अन्त में नमः** जोड़ने से होता है। दाहिने कन्धे पर धर्म, बायें कन्धे पर ज्ञान, बायें ऊरू पर वैराग्य, दाहिने ऊरू पर ऐश्वर्य,

मुख पर अधर्म, बायें पार्श्व में अज्ञान, नाभि में अवैराग्य, दाहिने पार्श्व में अनैश्वराय/अनीश्वर भाव भी है। अर्थात् मनुष्य में विद्या भी है, अविद्या भी, परन्तु विद्या से अविद्या का नाश सम्भव है।

इसके पश्चात् हृदय में—

ॐ अनन्ताय, पद्माय, अं सूर्य मण्डलाय—द्वाद्वश कलात्मने, उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने, मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने, पं परमात्मने ह्रीं ज्ञानात्मने नमः का विधान है।

आर्ष पद्धति के अनुसार सिर में ऋषि, मुख में छन्द, हृदय में इष्टदेव/देवी तथा सर्वाङ्ग में शिवशक्ति युक्त / सशक्ति अपेक्षित देवता का न्यास किया जाता है।

इसी न्यास से चित्त, चित्ति, चैतन्य, चिन्मय से एकाकार हो जाता है केवल शुद्ध चैतन्य का साक्षात्कार ही रह जाता है। जीव और शिव शक्ति का एकाकार स्थूल बिन्दु 'शब्द' कहा गया है, यही सूक्ष्म सत्त्व सचिन्तन है, जो अचिन्तन है, नाम रूप को उल्लंघित कर 'पर-बिन्दु' कहा गया है—

सत् ही सौम्य है, भेद शून्य, विशेष रहित, निर्विकार, असङ्गतियुक्त अव्यय, अप्राणं-निरन्तर स्वगत, यही मन है।

मातृका पूजनमेव मातृवन्दना

मातृका पूजन ही मातृतत्त्व की वन्दना है। जगत् जननी श्री शारिका शिला रूपिणी चक्रेश्वरी इस ब्रह्माण्ड की रचना एवं पालन करती है, वह ब्रह्म से अभिन्न है। चक्रेश्वर बीज रूप में ब्रह्म तत्त्व है। शक्ति स्वरूपा सहस्रनाम्नी देवी शारिका शिव/चक्रेश्वर की सक्रिय अवस्था है। इस की वृत्ताकार गति क्रियात्मक शक्ति है।

सप्तमातृका स्वरूपा शक्ति को व्यक्त रूप में भी पूजा जाता है। माया, महामाया, मूल-प्रकृति, विद्या, अव्यक्त, अव्याकृत, कुण्डलिनी, महेश्वरी, आद्याशक्ति, नव दुर्गा, काली, महाकाली, लक्ष्मी, सिद्ध लक्ष्मी, भद्रकाली, बाला, त्रिपुरा 'पराशक्ति' की ही अभिव्यक्तियाँ हैं। वह द्वादश आदित्यों के साथ द्वादशकाली का भी स्वरूप धारण करती है, जिनका स्वरूप इस प्रकार है—

१. कौलार्णव आनन्द स्वरूपा— आनन्दकाली
२. महाविनोद-अर्पित मातृचक्ररूपा—विश्वाकृति रक्तकाली
३. वाजिद्वयस्वीकृत वात्‌चक्ररूपा— स्थिति नाशकाली
४. सर्वार्थ संकर्षण संयत्र रूपा— संकर्षणकाली
५. उन्मयन्ता निखिलार्थगर्भ रूपा— मुदित संहारकाली
६. ममेत्यऽहंकार कला कलाप रूपा—कालोचित मृत्युकाली
७. विश्व महाकल्प रूपा— शुभ भद्रकाली
८. मार्तण्डापीतपतङ्ग चक्र रूपा— सतत मार्तण्डकाली
९. अस्तोदित द्वादश भानुस्वरूपा— परमार्ककाली
१०. कालक्रमाक्रान्त स्वरूपा— कालानलरूद्रकाली
११. नक्तमहाभूतलय श्मशान रूपा—महाकालमऽलं-उग्रकाली
१२. क्रमत्रय त्वाष्ट्र मरिचिचक्र रूपा—महाभैरव घोर चण्डकाली

यह मातृका-सर्वस्त्रीनिलया है। सभी स्त्रीमात्र में मातृका ही वास है, क्योंकि उसमें गर्भधारण करने की क्षमता है और ममत्व का भाव है। कहा है—जगदम्बामयं पश्य स्त्रीमात्रं विशेषत:।

स्थूलं शब्देति प्रोक्तं सूक्ष्मं चिन्तामयं भवेत्।
चिन्तया रहितं यत्तु तत्परं परिकीर्तितम्॥

शिव-शक्ति-बिन्दु समस्त तत्वों के उपादान रूप से प्रकाशमान है। शैव तंत्रों के आधार पर शुद्धमाया तत्व शुद्ध जगत् का उपादान बिन्दु है। कर्त्ता शिव है, कारण शक्ति है। बिन्दु महामाया का संकोच है तथा प्रसार में श्रीचक्र की उत्पत्ति का यांत्रिक स्फुरण भी है। यही कालचक्र भी है और भवचक्र भी। शाक्तमत के अनुसार सृष्टि, पालन, संहार, निग्रह और अनुग्रह का अनादिकारण एवं कर्त्ता परमेश्वर शिव है। ब्रह्मादि देवता द्वार मात्र है। जिन्हें चक्रेश्वर में भूपुर की संज्ञा दी जाती है।

समस्त भावों के मनन और सम्पूर्ण सृष्टि के त्राण के लिये मंत्ररूपा शक्ति मनन-त्राण रूपिणी, सप्तमातृका कहलायी जाती है।

अकारादि मातृका ही **'कलादेवी-रश्मि'** विभिन्न गुणविशेषों से पूजी जाती है। स्थूल वर्णरूप-पद-वाक्य की संरचना से **वामदेवो** सूक्ष्म से स्थूल रूप में अवतरित होती है।

आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला।

अम्बिकारूपमापन्ना परावाक् समुदीरिता॥

जिस समय परा शक्ति अपने स्फुरण को देखती है। उस समय अम्बिका रूप को प्राप्त हुई 'परावाक्' कही जाती है।

वास्तव में मातृपूजन अथवा मातृकापूजन भारतीय शाक्त-संस्कृति का अभिन्न अङ्ग है। प्रादेशिक अथवा आंचलिक दृष्टि से देखा जाये तो अनुष्ठान में कोई भिन्नता नहीं है, परन्तु देश-काल-परिस्थिति-गुण-कर्म-स्वभाव के कारण स्थूल रूप से पूजा पद्धति में कहीं कहीं पाठभेद अथवा कर्मकाण्ड भेद दिखाई देता है। जो गौण है। इसी संदर्भ में कश्मीर के शक्त आचार्यों ने '**अनुमति, राका, सिनीवाली, कुहू, धात्री, सर्वेश्वरी, अन्नेश्वरी**' श्रीसप्तमातृकाओं से प्रसाद पाने के लिए दीपधूप, स्पर्श, तिलक, अर्घ्य, पुष्प, अन्न, आज्य, अक्षत, दक्षिणा, अपोशान, आचमन तथा नैवेद्य से पूजा अर्चना की विधि बतलाई है। **अन्त में भोग चढ़ाने के समय—या काचित योगिनी रौद्रा-सौम्या-घोरतरा-परा-खेचेरी-भूचरी-रामा तुष्टा भवन्तु में सदा, आकाश मातृभ्यः अन्नं नमः, समालभनं गन्धो नमः, अर्घो नमः, पुष्पं नमः, क्षां क्षेत्राधिपतये अन्नं नमः, रां राष्ट्राधिपतये अन्नं नमः सर्वाभयवर प्रदः** अमपि पुष्टिं पुष्टिपतिर्दधातु। साष्टाङ्ग प्रणाम करते समय आर्ष मंत्रों द्वारा दूध युक्त हिमपान (जल) से तर्पण करते हुए **नमो ब्रह्मणे, नमो असतु अग्नये, नमः, पृथ्व्यै, नमः औषधीभ्यः, नमो वाचे, नमो वाचस्पतये, नमो विष्णवे वृहते कृणोमि। इति एतासामेव देवतानां सामीप्यं सार्ष्टिं सायुज्यं सलोकता सामीप्यं—आप्नोति य एव विद्वान् स्वाध्यायमधीते। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।**

अक्षर योग

वर्णमाला द्वारा अपने शरीर में स्फुरण पैदा करना षड्ङ्ग न्यास कहलाता है।

अथ कर न्यास :

१. अं ॐ आं — अङ्गुष्ठाभ्यां नमः हृदयाय नमः
२. इं ॐ ईं — तर्जनीभ्यां नमः शिरसे स्वाहा
३. उं ॐ ॐ — मध्यमाभ्यां नमः शिरवायै वषट्

४. ॠ ॐ ॠ — अनामिकाभ्यां नमः   कवचाय हुँ

५. ए ॐ ऐं — कनिष्ठकाभ्यां नमः   नेत्राय वौषट्

६. ओं ॐ औं — करतलकरपृष्टाभ्यां नमः—अस्त्राय फट्

षड्ंग न्यास एवं करन्यास, वर्णात्मिका शक्ति, जो भक्त के अङ्गों में निवास करती है, उसी वर्णात्मिका शक्ति को करन्यास से अनुभव में लाना है, तथा शरीर के छः अङ्गों में स्पन्द द्वारा अनुभव में गृहीत करना है। यह इसकी योग साधना है।

ॐ वं शं षं सं नमः मूलाधारे चक्रे

ॐ बं भं मं यं रं लं नमः स्वाधिष्ठाने चक्रे

ॐ डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं नमः मणिपुरे चक्रे

ॐ कं खं गं घं ङं, चं उं जं झं ञं, टं ठं अनाहते चक्रे

ॐ अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ल्ॠं एं ऐं ओं औं अं आं, ऊं हं क्षं नमः आज्ञा चक्रे नमः विशुद्ध चक्रे

इस प्रकार सहस्रदल में ५२ पद्मपत्र रूपी वर्णमाला गर्भित है।

ध्यान मंत्र :

अकारादि-क्षकारान्ता मातृकावर्णस्वरूपिणी।
यया सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥

भावार्थः— मुख्यतः अ से लेकर **अः** तक के सौलह वर्ण, अपने आप में स्वतंत्र है। इस स्वर स्वरूप को किसी का आश्रय नहीं लेना पड़ता है, अपितुः व्यञ्जन अपने आप में अपने में अस्पष्ट होने के कारण इन १६ वर्णों में से ध्वनि के आधार पर अपनाता है। यही स्वर सिद्धान्त कहलाता है। अतः विशुद्ध चक्र के १६ पद्मपत्रों में इनका वास माना जाता है। ध्वन्यात्मक स्वरूप में १, ३, ५, ७ का वर्ण ह्रस्व है, तो २, ४, ६, ८ दीर्घ है। **अ-अन्तर्याग** है। मंत्राणां मातृका देवी—देव्यथर्व शीर्ष के अनुसार मंत्रों का स्रोत '**ऐं**' कहलाया गया है। पञ्चस्तवी में वर्णित है :

प्रलीने शब्दौघे तदनुविरते बिन्दुविभवे,
ततस्तत्त्वे चाष्टा ध्वनिभिर्नुपाधिनि उपरते।

श्रिते शक्ते पर्वण्यनु कलित चिन्मात्र गहनां
स्वसंवित्तिं योगी रसयति शिवाख्यां परतनुम्।

—सकलजननी स्तवः ५/१८

मूलाधार चक्र में ध्यान स्थिर होने पर ध्वनियाँ सुनने में आती है, तत्पश्चात नादध्वनियाँ लय की अवस्था में आकर, योगी को शिव रूपी प्रकाश का साक्षात्कार होता है। तत्पश्चात् यही योगी **अष्टध्वनिमिः** .... आठ प्रकार की ध्वनियों से अवगत होता है। शक्ति-मातृका स्वरूपा की महत्ती कृपा से उत्कृष्ट स्वभाव से पूर्ण संवित् का रसपान कर लेता है।

व्योमेति बिन्दुः इति नादेतीन्दुलेखा
रूपेति वाक्भवतूनः इति मातृकेति
निष्यन्दमान सुख बोध सुधास्वरूपा
विद्योतसे मनसि भाग्यवतां जनानाम्।

—अम्बस्तवः ३

चारों ओर सर्वत्र व्याप्त, बिन्दु, नाद, इन्दुलेखा (चन्द्रकला) एवं वाक् सरस्वती मातृका 'अ से क्ष' तक स्वरूप वाली द्रवीभूत होकर सौभाग्यवाले भक्तों पर कृपा करके अपना स्वरूप प्रकट करती है।

इसीलिए आदि शंकराचार्य ने गौरीदशकम् में कहा है—

आदि क्षान्तमक्षरमूर्त्या विलसन्तीं
भूते भूते भूतकदम्ब प्रसवित्रीम्।
शब्द ब्रह्मानन्दमयीं तामभिरामां
गौरीमम्बां अम्बुरूहाक्षीमऽहमीढ़े॥

'अ' वर्ण से लेकर संयुक्त वर्ण 'क्ष' तक अक्षर रूप में विलास मुद्रा में रमण करती हुई, युग युगान्त से सृजन करती हुई, शब्द ब्रह्म स्वरूप आनन्दस्वरूपा गौरवर्णा-गौरी की मैं स्तुति करता हूँ।

देवी-अथर्व शीर्ष में प्रार्थना

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञान रूपिणी।

ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्य साक्षिणी।

यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता॥

समस्त मंत्रों की जननी मातृका देवी है। मन को नियंत्रण में रखने के लिए तथा उसी से मानसिक ऊर्जा प्राप्ति के लिए मातृका पूजा वाञ्छनीय है। मात्राओं से ही शब्द निर्माण तथा शब्दों का आकार बनता है। उन शब्दों में ज्ञान का उदय होता है। ज्ञान से विमर्श करने की शक्ति प्राप्त होती है। प्रतिभा एवं प्रज्ञा का प्रकाश प्राप्त होता है। चैतन्य शक्ति का आविर्भाव होता है। तथा चिन्मयातीत अवस्था अर्थात् तुरीयावस्था की प्राप्ति होती है। तदनन्तर तुर्यातीतावस्था में शून्य ही शून्य दिखता है, वही पूर्णता कहलाती है। वही दुर्गा कहलाती है। वही षोडषी स्वरूपा मातृका है।

कादि विद्या के अन्तर्गत - **वाग्भव कूट** की साधना इस प्रकार है— **ऐं अं नमः ललाटे। ऐं आं नमः मुखवृत्ते। ऐं इं नमः दक्षिण नेत्रे। ऐं ईं नमः वामनेत्रे। ऐं उँ नमः दक्षिणकर्णे। ऐं ऊँ नमः वाम कर्णे। ऐं ऋं नमः दक्षिणनासायां। ऐ ॠं नमः वाम नासायां। ऐं लृं नमः दक्षिणगण्डे। ऐं लॄं नमः वाम गण्डे। ऐं एं नमः ऊर्ध्वोष्ठे। ऐं ऐं नमः अधरोष्ठे। ऐं ओं नमः ऊर्ध्वदन्तपक्तौ। ऐं औं नमः अधोदन्तपंक्तौ। ऐं अं नमः मूर्ध्नि। ऐं अः नमः मुखे। ऐं कं नमः दक्षिण बाहुमूले। ऐं खं नमः दक्षिणकूर्परे। ऐ गं नमः दक्षिण मणिबंधे। ऐं घं नमः दक्षिण हस्तांगुलि मूले। ऐं ङं नमः दक्षिणहस्तांगुल्यग्रे। ऐं चं नमः वाम बाहुमूले। ऐं इं नमः वाम कूर्परे। ऐं जं नमः वाम मणिबन्धे। ऐं झं नमः वाम हस्तांगुल्यग्रे। ऐं टं नमः दक्षिण पादमूले ऐं ठं नमः दक्षिणजानुनि। ऐं डं नमः दक्षिणगुल्फे। ऐं ढं नमः दक्षिणपादाङ्गुलि मूले। ऐं जं नमः वाम हस्तांगुल्यग्रे। ऐं टं नमः दक्षिणपाद मूले। ऐं ठं नमः दक्षिणजानुनि। एं डं नमः दक्षिणगुल्फे ऐं ढं नमः दक्षिपादागुलि मूले। ऐं णं नमः दक्षिणपादांगुल्यग्रे। ऐं तं नमः वामपादमूले। ऐं थं वाम जानुनि। ऐं दं नमः वाम गुल्फे। ऐं धं नमः वामपादांगुलि अग्रे। ऐं पं नमः दक्षिण पार्श्वे। ऐं फं नमः वामपार्श्वे। ऐं बं नमः पृष्ठे। ऐं मं नमः नाभौ। ऐ मं नमः उदरे। ऐं यं त्वगात्मने**

नमः हृदि। ऐं रं असृगात्मने नमः दक्षिणांसे। ऐं लं मांसात्मने नमः ककुदि। ऐं वं मेदात्मने नमः वामांसे। ऐं शं अस्थ्यात्मने नमः हृदयादि दक्षभुजान्तम्। ऐं षं मज्ञात्मने नमः हृदयादि वाम भुजान्तम्। ऐं सं शुक्रात्मने नमः हृदयादि दक्षपादान्तम। ऐं हं आत्मने नमः हृदयादि वाम पादान्तम्। ऐं परमात्मा नमः हृदायादि मस्तकानाम्। (इति सृष्टि-न्यासः)

आकार वासुदेवस्य, उकारस्य पितामहः। पौराणिक ऋषियों द्वारा पुरुष और प्रकृति के मध्य का युगल स्वरूप वासुदेव है। वर्णमाला का 'अ' ही गीता ज्ञान के प्रणेता वासुदेव है, उकार पितामह ब्रह्मा है तथा नासिका द्वारा उच्चारित म् (हलन्त) तथा चन्द्रबिन्दु ही शिव है। ब्रह्मा सृष्टि सूचक है, अतः अ/आ, इ/ई, उ/ऊ की महत्ता वर्णमाला के तृतीय पाद पर आधारित है। **अक्षराणां अकारोऽस्मि**। जिस किसी भी ध्वनि का क्षरण नहीं होता है वही अकार है। वर्ण शब्द भी अक्षर ही है। व का अर्थ पूर्णतः एवं प्राण, र का भाव रंजित करना, ण-ध्वनि है। वर्ण वह है, जिसके लिए अल्पप्राण अथवा महाप्राण से बोलने की आवश्यकता पड़ती है।

मातृकाओं पर आधारित ध्वनि में वर्ण का अर्थ भी प्रकट होता है। ध्वनि वाणी तन्त्र है, नाभि चक्र से मुख के विभिन्न भाग—कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त, ओष्ठ, नासिका ही विभिन्न ध्वनियाँ निकालने के लिए ईश्वर की देन है। मन में बोलने की इच्छा, अथवा लिखने की या किसी भी विषय पर मनन करने की क्षमता होती है। शरीर की ऊर्जा अग्नि नाभि में है, अग्नि की ज्वलन प्रवृति (स्वभाव) ही ऊपर उठने की है, परन्तु वायु कण्ठ स्थान में अक्षर के रूप में ध्वनित करने की क्षमता रखता है। विचार एवं वार्त्तालाप प्रकट होते हैं।

यूँ तो अक्षरों और देवताओं का सम्बंध मंत्र रूप में निहित है। प्रत्येक देवता का अपना बीजाक्षर है। जैसे गणेश से **ग** के ऊपर **गँ** बीज है। **क्लीं** से कृष्ण एवं काली, **हँ** से हनुमान, **रं** से राम, **शां** से शारिका, **रां** से राज्ञी देवी, **सां** से सूर्य संबंधित है। प्राण शक्ति के द्वारा विसर्ग नाभि में, कण्ठ में अकार, ह का होना निशिचित है। अ और ह विपरीत अर्थ में है। अ, अस्तित्व भी है, तथा नकारात्मक भी है, जैसे अयोनिजा-

नकारात्म के साथ में होते हुए भी शक्ति सर्वशक्तिमान देवी है। **आचम्य** सकारात्मक है, **अद्यतन** भी सकारात्मक है। **अ से वर्ण को प्रकाश प्राप्त होता है।** कोई भी वर्ण विसर्ग और आकार के बिना उच्चारित नहीं होता है। **अ** नाभि की गहराई से उच्चारित होने पर विर्सग (:) बन जाता है। जो अपने आप में एक दूसरे के पूरक होते हैं। विसर्ग का ऊपरी बिन्दु परमात्मा कहलाता है, और निचला जीवात्मा कहलाता है।

सप्तमातृकाएं जननी हैं, वर्णकर्त्ता शिव जनक है, वही सृष्टि कर्त्ता है। वर्ण तथा सप्तमातृकाओं का यही पारस्परिक संबंध है। महेश्वर सूत्र चौदह सूत्र शिव के आनन्द नृत्य से ही प्रस्फुटित हुए हैं।

सप्तमातृकाओं का अपना वाहन भी है, जैसे ब्रह्माणी का हँस है जो वास्तव में सः + अहम ही है। माहेश्वरी का वाहन वृषभ, कौमारी का मयूर वाहन है। सप्तमातृका रूपी वर्णमाला से वर्णित मंत्रों में वर्णक्रम, संख्या, उच्चारण, वर्ण निर्देश, लिपि एवं वर्ण का ज्ञान भी होना चाहिए। चेष्टा इंगित करना है, जिसमें न्यास भी सम्मिलित है।

ॐ सर्वं रूपमयी देवी सर्व देवीमयं जगत्।

अतोऽहं विश्वरूपां तां नमामि परमेश्वरीम्॥

वर्णात्मिा सप्तमातृका सर्वरूपमयी दिव्य स्वरूपा देवी है, यह जगत भी सर्वदेवमयी है। इसीलिए इस जगत को सप्तलोकों **—भूः भुवः स्वः महः जनः तपः** में भिन्नता होते हुए भी चैतन्य स्वरूप होने के कारण समरसता भी है, और सौंदर्य की अनुभूति भी।

भर्तृहरि के वाक्यपदीय के अनुसार—

तस्य प्राणे च या शक्तिर्या च वृद्धौ व्यवस्थिता।

विवर्तमाना स्थानेषु सैषा भेद प्रकाशते॥ (१.१२७)

इस शब्द ब्रह्मन् के प्राण में जो शक्ति है, और जो वृद्धि में व्यवस्थित है। स्थान (लोक, भूः भुवः इत्यादि) में जो नृत्य-विवर्तमान होती हुई चारों और घूमती है, यही भेद प्रकाश है। वास्तविक विकार इसी नाद या वाक् में होता है, जिसकी जननी शब्द स्वरूपा सप्तमातृका है। यही सप्तमातृका आवृत होने पर अविकारी स्फोटात्मा भी विकारी प्रतीत होता है।

सप्तमातृका काव्य की मूल प्रेरक शक्ति का छन्दात्मक स्वरूप है। यह आनन्द की अवस्था है, और काव्य शास्त्र में अमर्त्य तथा मनोमय कोश के लिए अभीप्सित है, वरेण्य है।

समरसता में भी जब घर्षण आता है, तब वह अवस्था स्फोट की अवस्था कहलायी जाती है। काव्य शास्त्र में भी 'ध्वनि' के प्रसंग में घर्षण आता है। अतः सप्तमातृका प्रत्येक ध्वनि में निहित है। यह मातृका का स्वभाव है।

सप्तमातृकाओं के द्वारा भी श्रीविद्या, श्रीसूक्त को समझा जाता है। 'श्रीविद्या' ही चित्-शक्ति है। चित् शक्ति जब लीला से अथवा 'शिव' के स्वातन्त्रय भाव से शब्द-शरीर धारण करती है, तभी आगम एवं स्वगत मंत्रों द्वारा, श्लोकों एवं बीजाक्षरों से देवी के द्विभुजा, चतुर्भुजा, अष्टभुजा, दशभुजा एवं आष्टादशभुजा का आवरण देख लेते हैं। अखिल प्रमाणों की प्रमातृ, चित्-शक्ति नाम को धारण कर लेती है।

भगवत्पाद आचार्य आदिशङ्कर सौन्दर्य लहरी में देवी का निरूपण करते हुए कहते हैं—

त्वदन्यः पाणिभ्यां अभयवरदो दैवतगण—
स्तमेका नैवासि प्रकटितवराभीत्यमिनया।
भयात् त्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छासमधिकं
शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ॥ श्लोक ४
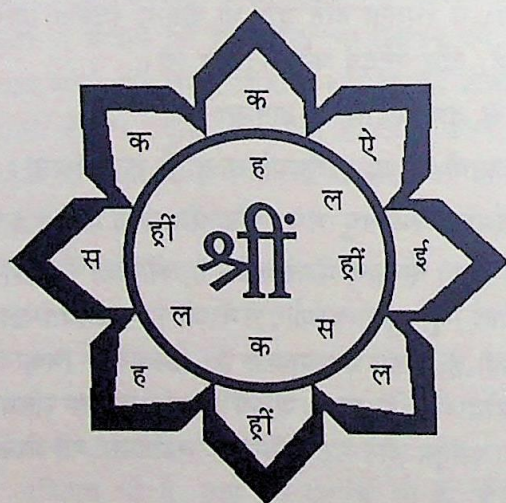
हे जगदीश्वरी! हे विद्या स्वरूपिणी! तुम ही मात्र ऐसी पराशक्ति हो, जिसने न समय का न वरदान का अभिनय किया है। तुम्हारे बिना सभी देवता अपने हाथों से वर तथा अभय देने वाले है। भक्तों के लिए वर तथा अभय दान केवल तुम्हारे चरण कमल ही हैं। जो भी आपके शरण में आ जाता है, नतमस्तक हो जाता है, उसे तत्काल वर तथा अभय का प्रसाद प्राप्त होता है।

"**स्वर्यन्त शबद्यन्त अति स्वरा:**" स्वर ही जीवात्मा है, शब्द का शब्द के साथ अर्थ एक दूसरे का पूरक है, जैसे पार्वती और परमेश्वर। मूल स्वर में हस्व का अपना आकार है, जैसे अ, इ, उ, त्रृ, लृ संधि अक्षर ए, ऐ, ओ, औ, भी स्वर शक्ति का अ से मिलने की प्रक्रिया है, जैसे अ तथा इ का ए होना, तथां अ का उ से ओ होना है।

अत: सप्त मातृकाओं के द्वारा वर्णमाला को दिव्य स्वरूपा, सौंदर्य युक्त, प्रकाश विमर्श एवं संवित् स्वरूपा का भाव प्रदान किया गया है। इस प्रकार स्वर शब्दार्थ का निर्णय करता है।

अन्धकारे दीपिकाभिर्गच्छन्न स्खलति क्वचित्।
एवं स्वरैः प्रणीतानां भवन्त्यर्थाः स्फुटेति॥

अन्धकार में दीपों का होना, अत्यावश्यक है, क्योंकि इससे पथिक दिग्भ्रमित नहीं होता है, ठीक स्वर संहिता का वास्तविक ज्ञान होने से मंत्रों का उच्चारण, अर्थ वास्तविक रूप में दिखाई देता है।

शैवागम के अनुसार सकल एवं निष्कल शिव अथवा सच्चिदानन्द स्वरूपिणी चित् शक्ति से कारण नाद तथा नाद से बिन्दु उत्पन्न होता है।

प्रमाण है : "**आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद्बिन्दुः समुद्भवः**। अनाहत नाद से बिन्दु अथवा कार्यनाद उत्पन्न होता है। शिव के साथ शक्ति-'**शिव शक्ति एक रूपिण्यै नमः**' के आधार पर संयुक्त भाव का आविर्भाव हो जाता है। प्रेरणा की आधार शक्ति शब्दार्थात्मक गद्य एवं पद्य काव्यात्मक कला की भान्ति आत्मा की अभिव्यक्ति है। एक साधक अपनी ध्वन्यात्मक भाव निष्ठा द्वारा 'अव्यक्त को व्यक्त', 'सूक्ष्म को स्थूल', 'एक वर्णा से अनेकवर्णा' बना देता है। यही ध्वनि का प्रकटीकरण है।

वास्तव में श्रीमाता ही सप्तमातृका की अक्षरमयी-ध्वनिपूर्ण अर्थयुक्त देवी बन जाती है। जिसे एक से अनेक का विस्तार कहा जाता है।"

वर्ण विलास में कश्मीर के आचार्य कहते हैं—

पराशक्ति के प्रभाव में पश्यन्ती और मध्यमा, आकार धारण करके वैखरी के द्वारा स्थूल वर्णों का रूप ही है। वर्ण समूह में इनकी संख्या इक्कावन (५१) है। वही सिद्ध पीठ हैं।

कामकला स्वरूपम्

इति कामकला विद्या देवी चक्रमात्मिका सेयम्।

विदिता येन स मुक्तो भवति महात्रिपुरसुन्दरी रूपः

श्लोक ८

यह चक्रेश्वर रूपिणी परात्पर शक्ति ही देवी चक्र के श्रीयुक्त नामालङ्कार से पूजित है। यही काम कला विद्या भी है। जिससे इस विद्या को ग्रहण किया, आत्मसात किया, एवं सप्ततंत्री देवी शरीर के संघटक सात मूल तत्व अर्थात् अन्नरस, रक्त, मांस, मेधा, अस्थि, मज्जा एवं प्रजनन शक्ति को जान लिया, वही भक्त मुक्त होता है। वह भक्त साक्षात् त्रिपुर सुन्दरी का रूप ही बन जाता है।

इसी कारण से सनातन विवाह पद्धति में सप्तपदी का विधान है। इसके पश्चात् वर-वधु में शिव और शक्ति की भक्ति, एक रूपता लाती है। पुष्प पूजा के समय (कश्मीरी पण्डित पोश पूजा) सप्तमातृकाओं के प्रारूप में वर वधु को शिव-शक्ति का स्वरूप माना जाता है। जन्मोत्सव पर भी मौली बंधन से सप्तर्षियों के सात गाँठ दिये जाते हैं।

आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष सप्तमी को सूर्य सप्तमी—आषाढ़ सप्तमी (हार-सतम) के नाम से जाना जाता है। प्रत्येक कश्मीरी पण्डित सप्तमातृकाओं की पूजा-अर्चना करने के लिए भगवान सूर्य की महिमा **सप्तसप्तद्युतिः** के रूप में करते हैं। इस पुण्य पर्व पर अन्नपूर्णा कोष्ठ-कश्मीरी पाकशाला / चौका और आँगन में प्रातः कालीन वेला में घर की ज्येष्ठ महिला सप्तमातृकाओं का निमंत्रण सौर मण्डल (हार मण्डुल) बनाकर, नैवेद्य अर्पण करके अपने आप के लिए एवं समस्त परिवार के लिए शुभ आशीष का वरदान माँगती हैं। देव्यपर्वशीर्षम्—श्लोक १४ में 'कादि' की वर्णन।

कामो योनिः कमला वज्रपाणिः गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।

पुनर्गुहा सकला मायया च पुरु च्येषा विश्वमातादि विद्योम्॥

कामकला विलास श्लोक ११, टीका के अनुसार

षष्ट् सप्तममथ वह्निसारथिमस्या मूलत्रिकमादेशयन्तः॥

अन्ततः शक्ति साधना में चक्रेश्वर स्वरूप अनन्त वैचित्र्यमय विश्व, आत्म प्रकाश से गर्भित भी है, तथा पूर्णतया प्रतिबिम्बित भी है। विशुद्ध चैतन्य के नामरूप से वर्णन करने पर भी इसका ज्ञान केवल अनुभव से प्राप्त होता है। विचार दृष्टि से विमर्श करने पर, साधक के लिए विश्वसत्ता-शिव शक्ति स्वरूप प्रकाश और विमर्श का नित्य सम्बंध है ही। इन दोनों शक्तियों के पारस्परिक विषमता का परिहार होने पर जिस साम्यरस बिन्दु का आविर्भाव होता है, उसी से '**चैतन्यमात्मा**' का स्फुरण होता है। इस बिन्दु के कारण सप्त-मातृकाओं का स्फुरण होता है। इस बिन्दु को सप्त मातृकाओं सहित 'पूर्णगिरि। **प्रद्युम्न पीठ-शारिका पीठ**', श्रीचक्रेश्वर पीठ, सुमेरू पीठ होने के कारण नमन करते हैं। अतः क्षमा प्रार्थना यूँ की जाती है—

जय भगवतिः विन्ध्य-वासिनि! कैलाश वासिनि! श्मशानवासिनि! हुंकारिणि! कालायनि! कात्यायनि! हिमगिरितनये! कुमार मातः गोविन्द भगिनि! शितिकण्ठाभरणे-अष्टादश भुजे-भुजङ्ग वलय मण्डिते-केंयूरहारा-भरणे-अजेय, ''खड्ग-त्रिशूल-डमरू-मुद्गर, चषककल-शरचाप-वरा, अभय, पाश, पुस्तक, कपाल-खट्वाङ्ग, गदा, मुसुल-तोमर चक्रहस्ते कृपापरे। प्रभूत विविधायुधे चण्डिके चण्डघण्टे किरातवेशे, ब्रह्माणि! रुद्राणि! नारायणि! ब्रह्मचारिणि! दिव्य तपोविद्यायानि वेदमातः गायत्रि सावित्रि, सरस्वति सर्वाधारे सर्वेश्वरि विश्वेश्वरि विश्वकर्तृ समाधि विश्रांतिमये चिन्मये चिंत्तामणि स्वरूपे, कैवल्ये, शिवे, निराश्रये, निरूपाधिमये, निरामयपदे ब्रह्माविष्णु-महेश्वर नमिते मोहिनि तोषिणि भयंकर नाशिनि दितिसुतप्रमथिनि काले कालकिंकरमथिनि कालाग्नि शिखे, कालरात्रि भक्तजनवत्सले सुरप्रियकारिणि दुर्गे! दुर्जये! हिरण्ये! शरण्ये! कुरु मां दयाम्॥ ओ३म श्री शारिकायै नमः, अष्टादशभुजायै नमः ॐ शां शारिकाये नमः।''

अन्ततः भक्तशिरोमणि पण्डित कृष्ण जू कार की स्तुति में मर्मस्पर्शी कश्मीरी श्लोक समापन के रूप में प्रस्तुत है—

चक्रेश्वरत हाजत खा, साज-ओ गदा रा पादशाह
वाह वाह व लक्ष्मी स्थापना श्री शारिका देवी नमः।

चेतना-चिन्मयी देवी

शाक्त-दर्शन एक महान् सांस्कृतिक प्रणाली के साथ-साथ भारतीय चिंतन का एक विराट् धार्मिक अनुसंधान है। इसकी मूल शक्ति भारतीय दृष्टिकोण सें सार्वभौमिक मनोभावों को क्रियान्वित करने में सक्षम है। आद्या शक्ति में तल्लीन परा-भट्टारिका दिव्य-जीवन के शाश्वत-सनातन नियमों से युक्त इच्छा-शक्ति को स्पंदित कर देती है। इसी दृष्टि से मार्कण्डेय ऋषि पितामह ब्रह्मा से संसार में परम गोपनीय तथा मनुष्यों की सब प्रकार से रक्षा करने वाली साधना के बारे में पूछते हैं।

मार्कण्डेय ऋषि का आर्ष-मन जिज्ञासा से युक्त है। ऋषि समस्त प्रकृति में व्यक्त प्राण एवं जड़-तत्व के अणु-अणु में भागवती शक्ति का अनुसंधान करना चाहते हैं। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनन्दमय कोष के पांच आयामों में हमारे ऋषियों ने योगसाधना की शाक्त-पद्धति से ब्रह्म, ब्रह्माण्ड तथा जीवों के मौलिकता का विवेचन किया। इसी आधार पर श्रीचण्डी कवच के ऋषि ब्रह्मा ने मातृबीज (विश्वजननी) का निरूपण किया।

शैल पुत्री से सिद्धिदात्री तक नव प्राधानिक शक्तियों को ही नवदुर्गा के नाम से आमंत्रित किया जाता है।

वास्तव में नव कन्याओं की पूजा एक प्राचीन शाक्त परम्परा है। इस पद्धति में कन्याओं के स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण रूप में ही पराशक्ति विश्वगर्भा का साक्षात्कार किया जाता है। आद्याशक्ति का अवतरण होता है, यह अवतरण क्षणिक नहीं होता है, यह नित्य निरन्तर, सत्य, सुन्दर, सनातन तथा सन्तुलन में होता है। श्री अरविन्द के अनुसार यह अवतरण 'भवानी भारती'..., का है जो बाला, तरुणी, प्रौढा, ज्येष्ठा, श्रेष्ठा, प्रसिद्धा, दुर्गमा, सुगमा तथा सुखाराध्या है। 'भवानी भारती' सत्य धर्म की धारिणी, व्रत-शालिनी, सौम्या तथा भयंकारी, अनादि शक्ति की प्रिय भूमि भारत है। इन नव शक्तियों के सान्निध्य से 'भवानी-भारती' सभी सागरों तथा पर्वतों को अपने सौम्य प्रकाश से प्रकाशित करती हुई दृढ़ प्रतिष्ठामयी, जगत के कल्याण के लिए आर्यभूमि में निवास करने का आह्वान करती है। श्री अरविन्द की प्रार्थना है—

सिन्धून्हिमाद्रिञ्च सुसौम्यभासा प्रकाशयन्ती सुदृढ़प्रतिष्ठा।
तिष्ठ प्रसन्ना चिरमार्यभूमौ महाप्रतापे जगतो हिताय

(भवानी भारती, पृ. ३२)

अवतरण शरीर में शुद्ध ज्ञान द्वारा साधित होता है, यद्यपि इसकी परिणति बुद्धि के अतिक्रमण में ही होती है।

(योग-समन्वय, पृ. २०७)

अवतरण की प्रक्रिया में ज्ञान-संग्रह, विचार-विमर्श, ध्यान, स्थिर चिन्तन तथा निर्णायक एवं निरीक्षक बनने की प्रवृत्ति रहती है। चैत्य पुरुष, चिदाकाश एवं चित् शक्ति में अनिवार्य रूप से पाई जाती है। इसी संदर्भ में शैल-पुत्री का अवतरण माना जाता है। मार्कण्डेय पुराण प्रमाण है, जिसका स्रोत देवी भागवत है।

शैल पुत्री—शारीरिक शक्ति की प्रतिक्रिया है। पर्वतराज हिमालय की पुत्री पार्वती में जब जगत चेतना का प्रवेश हुआ, तो उसने शिला का रूप धारण किया। शिला स्थूलकाय है, यही जीवन की पुण्य एवं तपोभूमि है तथा जीवन की आधारशिला भी। इसी में जल, वन, वनस्पति, वन्यप्राणी अर्थात् शारीरिक शक्ति पाई जाती है। योग की परिभाषा में यही मूलाधार शक्ति है। कुण्डलिनी शक्ति को जागरण करने की यह विशेष प्रक्रिया है। तन्त्रशासत्रों में शैल पुत्री ही मूलाधार निवासिनी है। साधक अपनी प्रकृति एवं सत्ता पर आसीनस्थ होकर शक्ति का अनुभव करता है। यही शारिका देवी है।

ब्रह्मचारिणी—सच्चिदानन्द को मूल-बिन्दु में धारण करने वाली प्राकृतिक शक्ति नित्य 'ब्रह्म' में विचरण करती है, साधक की ऊर्ध्वमानसिक अनुभूति ब्रह्मचारिणी के अवतीर्ण में परमाकार स्वरूपा, निराकार तथा साकार है। यह तत्व ज्ञान से प्राप्त विभूतियों में अपनी प्राणिक एवं मानसिक चेतना का साक्षात्कार करता है। यहीं पर समाधि की लयावस्था में चले जाना होता है। यह शक्ति, कर्मों का क्षय करती है तथा कर्म साक्षिणी भी होती है। अतिमानसिक चेतना की यात्रा में अर्न्तज्ञान एक ऐसी यौगिक प्रणाली है, जो अन्त: स्फुरण को अपने सामान्य मन में उतार कर अक्षर, अनन्त, अचल तथा अविकारी सत्ता का स्वयं-सिद्ध अनुभव कराती है। यही ब्राह्मीशक्ति अपने कलना रूप से गुणत्रय का समन्वय है। शारिका पर्वत परिक्रमा में यही **श्री गणेश** है। जैसा कि गणदत्यर्थव शीर्ष में वर्णित है।

चन्द्रघण्टा—यह आह्लदकारिणी शक्ति कमनीय है। यह शक्ति ब्रह्म से व्यक्त हुई नाद शक्ति का संचार करती है। चन्द्रघण्टा पुरुषार्थप्रदा है। गायन, वादन तथा नृत्य में व्यक्त होकर मनुष्य की उपलब्धियों में अहंकार, संकल्प, आग्रह की प्रवृत्ति बन जाती है। धर्म, दर्शन, ज्ञान, विज्ञान इस शक्ति की अभिप्रेरणा है। अतिमानस में प्रवेश करके सार्वभौमिक सौन्दर्य को क्रियान्वित कर देती है। बीजाक्षरों का वर्गीकरण अपरिच्छिन्न चेतना

को मनोमय सत्ता में रूपांतरित कर जाग्रत अवस्था की उपलब्धि करा देती है। चन्द्रघण्टा बहुत्व, व्यक्तित्व की उच्चतर आध्यात्मिक सत्ता में उन्मुक्ति है। **सप्तऋषि शिला वास्तव में चन्द्रघण्टा है**। यह सात ऋषि मंत्र दृष्टा एवं गोत्र प्रवर्त्तक रहे हैं।

कूष्माण्डा—त्रिविधताप से युक्त चित्स्वरूपिणी सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि मन के रोगों को जलाती है, शरीर के रोगों को शांत करती है, इस त्रिविधताप को ही ऋषि अनादि काल से प्रकृति कह कर शुद्ध विद्या के नाम से पुकारते हैं। चिदाकाश में ज्ञान के अमृत से यह शक्ति अनेक प्रकारों से हृदय रूपी गुहाओं में वास करती है। व्यक्ति को स्थूल से सूक्ष्म तथा सूक्ष्मातीत जानने के लिए स्वभावत: ही प्राण को रूपांतरित करना होगा। कूष्माण्डा सचेतन होने की प्रक्रिया है, जिससे शक्ति गर्भित बीज सुवर्णवर्णा, अरूणवर्णा तथा गैरवर्णा अनेकों ब्रह्माण्डों के अगणित समूहों से अस्तव्यस्त क्रिया में, इच्छा एवं ज्ञान से उपस्थित होती है। समस्त चेतन शक्ति चेतना की क्रिया है और संकल्प भी है। यही **परिक्रमा में काली की शिला** है। क्योंकि आदि बीज पूर्ण अंधकार में ही प्रस्फुटित होता है।

स्कन्दमाता—भागवत शक्ति से उत्पन्न सफलता, आजीविका तथा विश्व संगंठन का आध्यात्मिक सत्य है। सृष्टि की तात्विक एकता तथा गौरव, श्री, विजय से पूर्ण स्कन्दमाता उज्जवल अतिमन को धारण कर लेती है। भौतिक प्रकृति में जड़ यथार्थ में चैतन्य से अभिमुख होकर वाक्शक्ति, क्रियाशक्ति तथा मानसिक शक्ति को समन्वित करती है। यह ऊर्ध्वक्रम विकास की प्राण-शक्ति है, इसमें बुद्धि, शान्ति, शक्ति, श्रद्धा, कान्ति, वृत्ति, दया, तृप्ति का समावेश है। स्कन्दमाता प्रत्येक व्यक्ति के भीतर है, परन्तु सबको सचेतन होना चाहिए। स्कन्दमाता छत्रच्छाया है तथा मानव जीवन के कष्ट और दारुण विपत्तियों से बचने के लिए जय तथा विजय की अन्तर्गत आविर्भाव में रूपांतरित होती है। छान्दोग्योपनिषद के अनुसार सनत्कुमार की जननी स्कन्द माता सर्वत्र विद्यमान है। परिक्रमा में यह **देवी आंगन की हारीं शिला** है।

कात्यायनी—पृथ्वी तत्त्व में निवृत्तिकला, जल तत्त्व में प्रतिष्ठा कला, अग्नि तत्त्व में विद्या कला, वायु तत्त्व में शान्तिकला तथा आकाश तत्त्व में व्योमकला 'अहंकर्ता' के अन्तर्गत अहंकृतभाव में साधना की क्षेत्री है। आद्या शक्ति देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए कात्यायनी शक्ति में अवतरित होकर 'ब्रह्मभूत' बन जाती है। त्रिकाल दृष्टि सम्पन्ना स्वभाव शक्ति से प्रवेश करके पंच कारण—ब्राह्मी, वैष्णवी, रौद्री, सदाशिवा, ईश्वरी को अतिमानस में रूपांतरित करके निश्चय ही साधना की गुरु बन जाती

है। इसीलिए परिक्रमा में **'चक्रेश्वर-स्वयं भू चक्रेश या श्रीचक्र है।'**

कालरात्रि-काल को हनन करने वाली अनन्त तथा असीम की जननी है। शिव के साथ अभिन्न भाव से ठहरी हुई, हलाहलविष को धारण करती हुई स्वभाव जनित शक्ति का ही विकास है। यही शाश्वत, अव्यय की आदि जननी है, जो काम तथा संकल्प से सवर्था अभिन्न है। जब भावावेग प्रतिक्रयाएं तथा चित्वृत्तियाँ आधारभूत चेतना से उठती है तो पराशक्ति कालरात्रि में प्रवेश करके शुद्ध सम्वेदनात्मक मन में अत्यन्त प्रत्यक्ष रूप से अनुभूत होती है। आसुरी शक्ति यद्यपि कालरात्रि की छाया शक्ति है, परन्तु दैवी शक्ति की आधारशिला कालरात्रि जगत की कल्यान रात्रि है। समय का आदि-अन्त इसी शक्ति में अदिति का रूप धारण करके देवतामयी बन जाती है। परिक्रमा में यह **सिद्ध लक्ष्मी की शिला** है।

महागौरी-तपस्या, साधना तथा योग द्वारा अतिमानसिक धारणा में आकर आन्तरिक जीवन को भगवान के साथ दिव्य-प्रकृति का आंशिक प्रतिबिम्ब ही महागौरी का अवतरण है। परा, पश्यन्ती तथा मध्यमा से शोभायमान महागौरी त्रिधामूर्ति है। यह स्वयं ज्योति है। अतिमानस के यज्ञ में महागौरी **महाविद्या से सर्वमङ्गला** तक योग साधना में तल्लीन होकर-आनन्दमय होकर अभेदमय होकर अनन्त रूपों वाली बनती है।

महागौरी हृदय का शोधक, प्रकाश तथा विमर्श का तादात्म्य, पर्याप्त सूक्ष्मता, उच्चतर ज्ञान शक्ति तथा सक्रिय बौद्धिक विचारों का समन्वय है। तथा परिक्रमा में इसका प्रादुर्भाव **श्रीराधाकृष्ण** (वैष्णवी शक्ति का युगल स्वरूप है।)

सिद्धिदात्री-अहंकार शून्य, पूर्णत्व की जागृत अवस्था, पूर्णयोग से आत्म स्वरूप को धारण करने वाली सिद्धि की अधिष्ठात्री देवी-सिद्धिदात्री है। ऋक्, यजु, साम तथा अथर्ववेद इस महान चेतना का ऐहिक तथा पारमार्थिक ज्ञान है। दिव्य-जीवन में दीक्षित कराने की शक्ति तथा अति मानस में निवास करने वाली अभीप्सा को कर्म का अङ्ग बनाकर सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति है। इस महान् शक्ति में शान्ति, समता, उदारता, साधुता, निभर्यता, अग्रम्यता, ग्रहणशीलता, अभीप्सा धृतिः, कृतज्ञता, नम्रता तथा सत्यशीलता का समन्वय है। यही शारिका पर्वत की परिक्रमा में **वामदेव ऋषि का अस्तित्व** है। वामदेव ऋषि सिद्ध ऋषि हैं, जिन्होंने स्वयं श्रीशारिका के भैरवी स्वरूप का साक्षात्कार करके स्वच्छन्द बहुरूपगर्भ का वर्णात्मिक स्वरूप प्रदान किया। इनका प्रादुर्भाव चैत्र कृष्ण पक्ष की अष्टमी दिवस है। श्री शारिका का वास्तविक स्वरूप षट्त्रिंशत तत्व (३६ तत्त्व) प्रदान

है। मुख्यत: श्री शारिका पृथ्वी तत्त्व में शिला रूपिणी है। बुद्धि तत्त्व में महागणेश है। जल तत्व में पोखरीबल कुण्ड, वायुतत्व में आञ्जनेय पवनसुत हनुमान का विग्रह है।

श्री शारिका का शिला रूपिणी पिण्ड दिव्य विग्रह है। उस पर्वत के कण-कण की गतिशीलता में वेदों के मंत्र निखरते रहते हैं। आगम शास्त्रों के शिव-पार्वती (भैरव भैरवी संवाद-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्रदाता है)। सप्तऋषियों की पुण्यशिला भाग्यवक्ता के रूप में सान्त्वना प्रदान करती है। देवी नाम विलास के रचेयता स्वामी साहिब कौल की साधना स्थली देवी आंगन ही वास्तव में श्री शारिका का क्रीडा स्थल है, जहाँ ऋषि पीर, कृष्णजूकार माता अलखेश्वरी, परम त्रिकाचार्य स्वामी रामजी, भगवान गोपी नाथ जी ने अपने तपस्या से अभिभूत होकर देवी शारिका का साक्षात्कार करते रहते थे। श्री रूपाभवानी अलखेश्वरी को शारिका देवी का अंशावतार ही माना जाता है-

ध्यान श्लोक इस प्रकार है-

अविर्भूता जनक तपसा शारिका अंशरूपा
ध्वान्तं भित्वा सकल जगतो यागवासीत्समक्षम्।
मक्तानाञ्च प्रवर सुखदामागता समीते
वन्दे नित्यं विकसितमुखी रूपनाम्नी भवानीम्॥

-श्रीरूपाभवानी रहस्योपदेश

यह शक्तियाँ एक होकर भी अनेक हैं, तथा अनेक प्रतीत होने पर भी एक हैं। मन की अभीप्सा के कारण ही शक्तियों का विभाजन हो सकता है।

शास्त्रों में कहा गया है-कि पञ्चमहाभूत, सप्त / अष्ट मातृकाएं, नव दुर्गा एवं दशविद्या चिन्मयी देवी का ही स्वरूप है।

श्री अरविन्द कहते हैं-

"आध्यात्मिक और दार्शनिक दोनों ही ज्ञान में शब्दों के प्रयोग में स्पष्ट और यथार्थ होना आवश्यक है, ताकि विचार और अनुभव की क्रमहीनता से बचा जा सके। यर्थाथ में शब्दों की क्रमहीनता के कारण शब्दों की अव्यवस्था होती है, जिनको हम उन्हें प्रकट करने में प्रयोग करते हैं। अत: शक्ति चिन्तन में नाम रूप में भेद होते हुए भी **अद्वैत भाव** है।"

शब्द ब्रह्ममयि! स्वच्छै! देवी! त्रिपुरसुन्दरि!
यथा शक्ति जपं पूजां गृहाण परमेश्वरी!

शक्ति, प्रद्युम्न, सिद्धिदा श्री शारिका।
पीठ हैं सारे हारीपर्बत में दुर्गा॥

श्री शारिका भवानी परिक्रमा दशकम्

परिक्रमा प्रारम्भ रक्तवर्ण गणेश।
शिलाकार सुन्दर श्रीविनायक विघ्नेश॥

सप्तऋषि प्रजापति जय सती देश।
ब्रह्मा मानस पुत्र से माँग फलादेश॥

काली स्थापना महाकाल की शक्ति।
आधार सृष्टि प्रलय परमेश्वरी॥

देवी-आंगन कण्ठनाद भवानी।
घंटा ध्वनि में आकाश वाणी॥

'माता! दया कर' राज राजेश्वरी।
शिला स्थापना सिंदूरवर्ण हारी॥

सिद्धलक्ष्मी स्थापना श्री महालक्ष्मी।
चिनार छाया में ध्यान चक्रेश्वरी॥

परिक्रमा देव 'वामदेव' स्थापना।
नमन श्री राज्ञी आदि अनन्ता॥

अमृतकुण्ड राज्ञी पोखरीबल स्थापना।
ब्रह्ममुहूर्त कुण्ड दर्शन शारिका॥

हनुमान मन्दिर हाटकेश्वर भैरव।
परिक्रमा समपन्न यह अद्भुत वैभव॥

इष्टदेवी माता श्रीचक्र स्वयंभू।
त्रिपुरसुन्दरी श्रीयन्त्र में बिन्दु॥

- विनीत

चमनलाल राज़दान

चक्रेश्वरत हाजत रवा साज़ो-गदा रा पादशाह

वाह वाह च लक्ष्मी स्थापना श्री शारिका देवी नमः

मूल्य 100/- रु.